शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 7 अंक : 5 1 दिसम्बर 2014

(मार्गशीर्ष-पौष, विक्रम संवत् 2071)

संरक्षक

मुकुन्द कुलकर्णी

प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक

प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी

बसन्त जिन्दल 9414716585

नौरंग सहाय भारतीय 9460142051

प्रकाशकीय कार्यालयः

82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,

जयपुर (राज.) 302001

दूरभाषः 9414040403,9782873467

दिल्ली ब्यूरो :

शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,

कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053

दूरभाषः 011-22914799

E-mail:

shaikshikmanthan@gmail.com

Visit us at:

www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 15/-

वार्षिक शुल्क 150/-

आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक

में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल

का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पाठ्यपुस्तकें: एक आवश्यक बुराई - विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पाठ्यपुस्तकों का महत्व शिक्षक से भी अधिक हो गया है। शिक्षक के बिना विद्यालय चल सकता है मगर पाठ्यपुस्तकों के बिना विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ वर्ष पूर्व तक एक विषय की एक से अधिक पाठ्यपुस्तकों का प्रचलन था। विद्यार्थी को पाठ्यपुस्तकों के कुछ विकल्प उपलब्ध होते थे। सरकारों द्वारा पाठ्यपुस्तकों का निशुल्क वितरण की परम्परा के बाद वह समाप्त हो गया है।

अनुक्रम

4.	शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका	- सन्तोष पाण्डेय
6.	विदेशी दृष्टि हमें कहाँ ले जाएगी?	- शंकर शरण
8.	पाठ्यपुस्तकों के बोझ से कुंद होती मौलिकता	- बजरंगी सिंह
15.	वर्तमान पाठ्यपुस्तकें - स्थिति और सम्भावनाएँ	- डॉ. रेखा भट्ट
17.	शैक्षिक गुणवत्ता का आधार पाठ्यपुस्तकें	- बजरंग प्रसाद मजेजी
18.	संस्कृत और संस्कृति	- संजय गुप्त
20.	भाषा के नाम पर खिलवाड़ क्यों?	- पूरन चंद सरीन
22.	भाषा के पहरुए	- हरजेंद्र चौधरी
24.	बाजार में बचपन	- शुभू पटवा
26.	बचपन लीलती पाठशालाएं	- चंद्रदेव भारद्वाज
28.	Puranas & Itihasas Historical Sources	- Y. Sudershan Rao
30.	शिक्षण संस्थानों में लैंगिक भेदभाव	- अंजलि सिन्हा
32.	मध्याह्न भोजन : बच्चों के स्वर्णिम भविष्य का आधार	- डॉ. अनीता मोदी
34.	शिक्षा की त्रिवेणी	- भरत शर्मा 'भारत'
35.	Living to Learn	- Shefali Tripathi Mehta
39.	Bullying in School to Get Punishable	- Ritika Chopra
40.	गतिविधि	

Importance of Books in Education

❑ **Prof. A. K. Gupta**

Development of a person sh thought of scientifically considerin to be read by the concerned. Traits terest should be watched carefull allow and inculcate skill developm as per natural growth of the fellow. plication of Psychology along with observations when applied scienti may help better grooming of the nati points if given due importance whil ing proper books to educate in rig ner is vitally important.

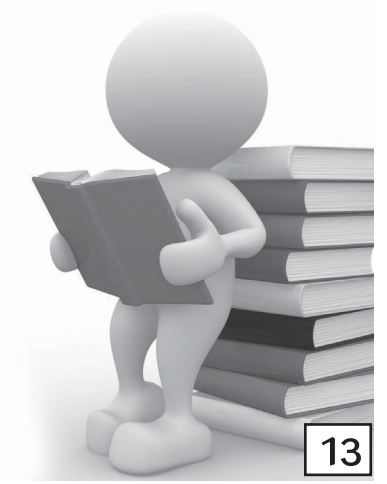

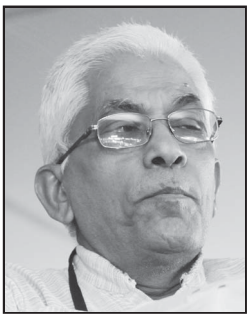

माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा वास्तव में आगे ज्ञान के विशाल सागर को लघु रूप में छात्रों को तैयार करने का कार्य करती है, यह वह अवस्था है, जहाँ पाठ्यक्रम के साथ-साथ पाठ्यपुस्तकें सीमा युक्त ज्ञान का महत्वपूर्ण मार्गदर्शन बन जाती हैं। वे ही सीमाकंन करती हैं कि छात्र का ज्ञान किन सीमाओं तक अपेक्षित है। यहाँ नवोन्मेष, नवाचारों से युक्त तथा रचनात्मक सोच व कृतित्व को प्रेरित करने वाली पाठ्यपुस्तकों की उपलब्धि अपरिहार्य हो जाती है। इस स्तर पर अध्ययन व अध्यापन केवल पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित नहीं होना चाहिये, वरन् छात्रों को सहपाठ्य पुस्तकों के अध्ययन को भी प्रेरित करना चाहिये।

शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यपुस्तकों की भूमिका

❑ सन्तोष पाण्डेय

संपादकीय

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भारत में शिक्षा के भावी स्वरूप के निर्धारण का विषय सामाजिक विचारकों व शिक्षाविदों में चर्चा का विषय है। एनडीए की सरकार के गठन के साथ ही शिक्षा के भावी स्वरूप, उद्देश्य, लक्ष्य व इनके प्राप्ति की कार्य योजना बनाना एक बार पुनः गंभीर चिंतन-मनन का केन्द्र बन चुका है। शिक्षा के जो भी उद्देश्य व लक्ष्य निर्धारित किये जायें, उनकी कार्यान्विति की योजना में पाठ्यचर्या का निर्धारण महत्वपूर्ण हो जाता है। शिक्षा के वास्तविक गुणात्मक उद्देश्यों की पूर्ति, पाठयक्रम निर्धारित किये बिना संभव नहीं है। यही कारण है कि देश में अब तक गठित सभी आयोगों, समितियों व प्रतिवेदनों में इसके महत्व को प्रतिपादित किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के लिये राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क निश्चित किया गया। शिक्षा किसी भी स्तर की क्यों न हो, यह तब तक सफलतापूर्वक प्रभावी नहीं बनायी जा सकती है, जब तक कि इसके अवयवों की सीमा निर्धारित नहीं की जाये। पाठ्यपुस्तकें इसी कार्य को सम्पन्न करती हैं। पाठ्यपुस्तकों द्वारा ही यह सुनिश्चित किया जाता है, पाठ्यक्रम में निर्धारित ज्ञान के स्तर को छात्र के स्तर तक लाया जाये। शिक्षा का सबसे बड़ा उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना है। शिक्षा एक ओर व्यक्तिगत उद्देश्यों यथा व्यक्ति में निहित संपूर्ण संभावनाओं को पुष्पित पल्लवित करे, व्यक्ति की रचनात्मक क्षमताओं, प्रवृत्तियों को उच्चतम स्तर तक ले जाने को प्रेरित करे, तो दूसरी ओर सामाजिक उद्देश्यों में दक्षित कर समाज के निर्माण, उत्थान, नये उद्देश्यों के सृजन के योग्य बनाये। यहाँ राजनीतिक उद्देश्यों को छोड़ना आवश्यक है, क्योंकि राजनीतिक उद्देश्य अल्पकालिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बन सकते हैं। जिस देश, समाज प्रकृति आदि के परिवेश में मानव समाज आगे बढ़ता है वह उसकी सांस्कृतिक विरासत होती है। जीवन दर्शन, मूल्य व्यवस्था, समस्याओं की पहचान व उनका निदान, इसे पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने में भाषा, धर्म, आचरण के प्रतिमान, नैतिक प्रतिमान, बुराईयों से परिहरण की व्यवस्था आदि की प्राप्ति शिक्षा के बड़े सामाजिक रीति-रिवाज व परम्पराओं के रूप में प्रकट होते हैं। यही ज्ञान है जिसे शिक्षा द्वारा प्रत्येक मनुष्य तक पहुँचाना समाज का अभीष्ट होता है।

व्यक्ति की शिक्षा-दीक्षा अनेक स्तरों से गुजरती है। भारत में शिक्षा प्राथमिक उच्च प्राथमिक माध्यमिक, उच्च माध्यमिक, व्यावसायिक तकनीकी कौशल विकास, प्रोफेशन, वोकेशनल व उच्च शिक्षा के रूप में उपलब्ध है। उच्च माध्यमिक के उपरांत शिक्षा, सामान्य शिक्षा का स्वरूप छोड़ ज्ञान की असीमित सीमाओं तक प्राप्त करने व

नये ज्ञान को सृजित करने का सशक्त माध्यम बन जाती है। व्यक्ति की क्षमताओं का पूर्ण विकास इस अवस्था में ही संभव हो पाता है। व्यक्ति की रचनात्मकता नये विचारों उपकरणों, नीतियों, व्यवहारों, नयी तकनीकों, पदार्थों के रूप में प्रकट होती है। इसी अवस्था में सिद्ध होता है कि ज्ञान का कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है। वही समाज आगे बढ़ पाता है, जो इस व्यवस्था को प्रेरित करता है। इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति में पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें महत्वपूर्ण उपकरण सिद्ध होते हैं।

प्राथमिक व उच्च प्राथमिक शिक्षा का मूल उद्देश्य बच्चों को भाषा, अंक, परिवेश, शाश्वत मूल्यों, सहकार्य, समानता आदि से अवगत कराते हुये सामाजिक परिवेश से परिचित कराना होता है। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता है। इस स्तर पर बच्चों को शिक्षित करने में शिक्षक की महती भूमिका होती है, जिसे वह पाठ्यपुस्तकों की सहायता से ही निभा सकता है। इस स्तर की पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार से निर्मित होनी चाहिये जो बच्चों में विभिन्न अभिरुचियों व रचनात्मक सोच के लिये प्रेरित कर सके। एतदर्थ पाठ्यचर्या व पाठ्यपुस्तकों को समाज की व्यापक आम सहमति प्राप्त होनी चाहिये। प्रेरक प्रसंग, आख्यान, कहानियाँ, कवितायें इन उद्देश्यों की प्राप्ति में पाठ्यपुस्तकों का आधार बन सकती हैं। पंचतंत्र की कहानियाँ व जातक कथायें जैसी पुस्तकें महत्वपूर्ण सह पाठ्यपुस्तकों का उदाहरण बन सकती है। यहाँ पाठ्यचर्या पर आम सामाजिक सहमति अपेक्षित है। बच्चों पर अनावश्यक रूप से अतिरिक्त शैक्षिक बोझ नहीं डाला जाना चाहिये। यह वर्तमान में एक प्रकार का चलन होता जा रहा है कि हर नये ज्ञान के बारे में प्रारंभिक जानकारी बच्चों को दी जाय। इनसे शैक्षिक बोझ बढ़ता है, रुचिकर शिक्षा का आकर्षण घटने लगता है। माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षा वास्तव में आगे ज्ञान के विशाल सागर को लघु रूप में छात्रों को तैयार करने का कार्य करती है, यह वह अवस्था है, जहाँ पाठ्यक्रम के साथ-साथ पाठ्यपुस्तकें सीमा युक्त ज्ञान का महत्वपूर्ण मार्गदर्शक बन जाती हैं। वे ही सीमाकंन करती हैं कि छात्र का ज्ञान किन सीमाओं तक अपेक्षित है। यहाँ नवोन्मेष, नवाचारों से युक्त तथा रचनात्मक सोच व कृतित्व को प्रेरित करने वाली पाठ्यपुस्तकों की उपलब्धि अपरिहार्य हो जाती है। इस स्तर पर अध्ययन व अध्यापन केवल पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित नहीं होना चाहिये, वरन् छात्रों को सहपाठ्यपुस्तकों के अध्ययन को भी प्रेरित करना चाहिये। प्रोफेशनल, वोकेशनल, व्यावसायिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, विविध ज्ञान की विशिष्ट शाखाओं का शिक्षण व अध्ययन बिना पाठ्यक्रम के अनुरूप पाठ्यपुस्तकों के बिना संभव नहीं है। यह सही है कि आज इंटरनेट व शिक्षा अन्य आधुनिक तकनीक आधारित ज्ञान-व्यवस्था की उपलब्धि ने पाठ्यपुस्तकों की भूमिका को कुछ मंद अवश्य किया है। परन्तु ये सभी सूचनायें प्रदान करने का आसान साधन हो सकते हैं, ज्ञान प्राप्ति के साधन नहीं।

उच्च शिक्षा की स्थिति व प्रवृति इनसे भिन्न होती है? उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रम ज्ञान का संकेतक होता है जिसे किसी एक या एकाधिक पुस्तकों में समाहित करना न व्यावहारिक और न संभव ही है। अनेकों पुस्तकों के विशिष्ट अंग व लेख पाठ्यपुस्तक का कार्य करते हैं। यहाँ संदर्भ ग्रंथों, संदर्भ शोध लेखों का महत्त्व बढ़ जाता है। ज्ञान कहीं से प्राप्त हो, उसे लेना अभीष्ट होना चाहिये। भाषा इसमें एक बड़ी बाधा होती है, जिसे अनुवाद की व्यापक व्यवस्था से पूरा करना अपेक्षित होता है। उच्च शिक्षा में शोध व अनुसंधान बिना क्रियेटिव इंसटिंक्ट के संभव नहीं है।

आज की शिक्षा व्यवस्था अनेक व्याधियों से ग्रस्त है। इनमें दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली व मूल्यांकन व्यवस्था, सहायक पुस्तकों (पास बुक इत्यादि) की प्रधानता, व्यक्तिगत टयूशन व कोचिंग, अंक प्राप्ति के लिये व्यक्तिगत व पारिवारिक महत्वाकांक्षाओं के दबाव का तनाव आदि पाठ्यपुस्तकों के महत्व को गिराने में सहायक हो रहे हैं। इनसे छात्रों में मौलिकता व रचनात्मकता हतोत्साहित होती है, और शार्ट-कट से सफलता प्राप्ति की प्रवृत्ति सुदृढ़ होती है। इन व्याधियों का निदान ढूंढना आज शिक्षा व्यवस्था की बड़ी आवश्यकता है। इसी प्रकार शिक्षा का राजनीतिक उद्देश्यों से विलग करना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है। आज विश्व में बड़े-बड़े परिवर्तन हो चुके हैं, ज्ञान व तकनीकी का स्तर विस्फोटक अवस्था में पहुँच चुका है। विश्व का आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक परिवेश बदला है, ऐसे में भारत की शिक्षा व्यवस्था व पाठ्यक्रम स्थैतिक अवस्था में छोड़े जा सकते हैं। सामाजिक विज्ञानों विशेषकर इतिहास, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र का पाठ्यक्रम इन सभी से निरपेक्ष रह सकता है। परन्तु भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से ही जिस संस्कृति व विचारधारा का पोषण किया गया है, क्या वह आज भी औचित्यपूर्ण है। क्या ये विचार, शिक्षा नीतियाँ इतनी अपरिहार्य व अक्षरणीय व सुदृढ़ हो गई है कि इनसे परे वैकल्पिक शैक्षिक नीतियाँ व इन पर आधारित पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों की कल्पना करना किसी विशेष विचार धारा का परिचायक बन जाये। आज देश का राजनीतिक चिन्तन बदल रहा है, जो गत 67 वर्षों से चली आ रही शैक्षिक व्यवस्था को अस्वीकार्य है। क्या यह अस्वीकारता, राष्ट्रीय राजनीतिक चिन्तन के विपरीत नहीं है? संविधान सभी के उत्थान, सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक सोच को आगे बढ़ाने का समान अवसर प्रदान करता है। तीन दशकों के बाद देश में किसी एक राजनीतिक दल को जनता ने संवैधानिक अधिकार प्रदान किया है, कि वह अपने राजनीतिक दर्शन के अनुरूप ही सामाजिक, आर्थिक व शैक्षिक नीतियों को अपनाये और देश व समाज को आगे ले जाने के लिये इनका उपयोग करे। नये वैचारिक धरातल के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन अपेक्षित हैं, पाठ्यक्रम निर्धारण व पाठ्यपुस्तक निर्माण जिसका अभिन्न अंग है। ❑

विदेशी दृष्टि हमें कहाँ ले जाएगी?

❑ शंकर शरण

हमारी परजीविता इतनी सामान्य बन गई है कि कई लेखकों, प्रकाशकों को चिंता भी नहीं कि जो वे लिख-परोस रहे हैं, उसका कोई स्पष्ट अर्थ या सार्थकता बच्चों, शिक्षकों के लिए बनती भी है या नहीं। चैप्टर बन गए, पन्ने भर गए, तस्वीरें डल गई, अशुद्धियाँ जैसे-तैसे देख ली गई और हो गया। अब और क्या चाहिए! दिए गए पाठों में संगति और अंतर्विरोध तक देखने वाला कोई नहीं होता। जैसे एक पुस्तक की प्रस्तुति में एक ओर तो पूरा महानगरीय वातावरण छापा हुआ है क्योंकि गाँव के उदाहरण, प्रसंग अनुभूतियां उसमें नदारद हैं। दूसरी ओर उसी पुस्तक के एक अभ्यास में बच्चे से कहा गया है, अपने बगीचे से पानी छिड़कने वाला डब्बा ले आएं। मूल पंक्ति है, 'यू कैन टेक द स्प्रिंक्लिंग केन फ्रॉम योर गार्डेन'। लेखक मान कर चल रहा है कि गार्डन तो है ही हर बच्चे के बंगले में। मानो सभी बच्चे लोदी इस्टेट या बंजारा हिल्स पर रहते हों, ऐसे पाठ किस दृष्टि से लिखे गए?

वीएस नायपाल ने हमारे अंग्रेजी मीडियम पर कहा था कि वे भारत की ही स्थितियों पर ऐसे बोलते-लिखते हैं जैसे किसी दूसरे देश की रिपोर्टिंग कर रहे हों। वस्तुत: यह यहाँ के प्रभावशाली पूरे बौद्धिक वर्ग के बारे में सच है। विश्वविद्यालयों में समाज अध्ययन (विज्ञान) विषय की सामग्री इसका प्रमाण है,

स्कूलों के लिए लिखी पाठ्य-पुस्तकों में भी यही झलक है, राजनीति, समाजशास्त्र, इतिहास जैसे विषयों की पुस्तकें मानो बाहरी लोगों द्वारा लिखी प्रतीत होती हैं, यद्यपि लेखक, प्रकाशन संस्थान आदि सब यहीं के हैं किन्तु उसकी सामग्री इतनी दूरी, तटस्थता और अजनबियत से लिखी है कि जैसे किसी विदेशी ने उसे लिखा हो। पाठों में दिए गए उदाहरण विदेशी नामों और प्रसंगों से अटे होते हैं।

जैसे एक स्कूली पाठ्य-पुस्तक में मनुष्य का रहन-सहन समझाने के लिए बस्तियों के चित्रों में यूरोपीय गाँव, नगरों के चित्र दिए गए हैं, अन्य वर्णन भी ऐसे हैं मानो जीवन केवल उच्चवर्गीय, महानगरीय ही होता है। घर में कार होना, खाने के लिए रेस्टोरेंट जाना, टूरिज्म का आनन्द लेना, टिन-बंद शीतल पेय का सेवन आदि ऐसे प्रस्तुत किये जाते हैं मानो यह तो हर घर की सामान्य बात हो। इनकी उपलब्धता सब पाठकों, बच्चों के लिए सहज, रोजमर्रा की बात मान कर चली गई है। जबकि वह पुस्तक किन्हीं विशेष मंहगे विद्यालय के बच्चों के लिए नहीं, पूरे देश के सामान्य विद्यालयों के लिए लिखी गई है।

हमारी परजीविता इतनी सामान्य बन गई है कि कई लेखकों, प्रकाशकों को चिंता भी नहीं कि जो वे लिख-परोस रहे हैं, उसका कोई स्पष्ट अर्थ या सार्थकता बच्चों, शिक्षकों के लिए बनती भी है या नहीं। चैप्टर बन गए, पन्ने भर गए, तस्वीरें डल गई, अशुद्धियाँ जैसे-तैसे देख ली गई और हो गया। अब और क्या चाहिए! दिए गए पाठों में संगति और अंतर्विरोध तक देखने वाला कोई नहीं होता। जैसे एक पुस्तक की प्रस्तुति में एक ओर तो पूरा महानगरीय वातावरण छापा हुआ है क्योंकि गाँव के उदाहरण, प्रसंग अनुभूतियां उसमें नदारद हैं। दूसरी ओर उसी पुस्तक के एक अभ्यास में बच्चे से कहा गया है, अपने बगीचे से पानी छिड़कने वाला डब्बा ले आएं। मूल पंक्ति है, 'यू कैन टेक द स्प्रिंक्लिंग केन फ्रॉम योर गार्डेन'। लेखक मान कर चल रहा है कि गार्डन तो है ही हर बच्चे के बंगले में। मानो सभी बच्चे लोदी इस्टेट या बंजारा हिल्स पर रहते हों, ऐसे पाठ किस दृष्टि से लिखे गए?

अनेक पाठ्य-पुस्तकों में, चाहे इतिहास हो या भूगोल, राजनीति या अर्थशास्त्र, सभी कुछ अमेरिका या यूरोप से ही आरंभ होता है। विचार, विवरण, उदाहरण, महापुरुष, चित्र सब कुछ। विवरण भारत पहुँचता भी है तो फार-ईस्ट (या अब साउथ एशिया) वाली विदेशी, औपनिवेशिक दृष्टि से एक पुस्तक में लद्दाख और मध्य-एशिया के बारे में परिचयात्मक विवरण है। मात्र चार पंक्तियों में भी यह बात प्रमुखता से लिखी गई है, फिर अभ्यास-पाठ में भी दुहराई है कि वहाँ के लोग बौद्ध या मुसलमान हैं। किन्तु उसी पुस्तक में उत्तरी अमेरिका के बारे में दिए बहुत बड़े अंश में भी यह कहीं नहीं मिलता कि वहां के लोग ईसाई हैं। क्यों? क्योंकि पाठ ही अमेरिकी-ईसाई दृष्टि से लिखा गया है, जो अपने लिए तो जानता ही है कि वह ईसाई

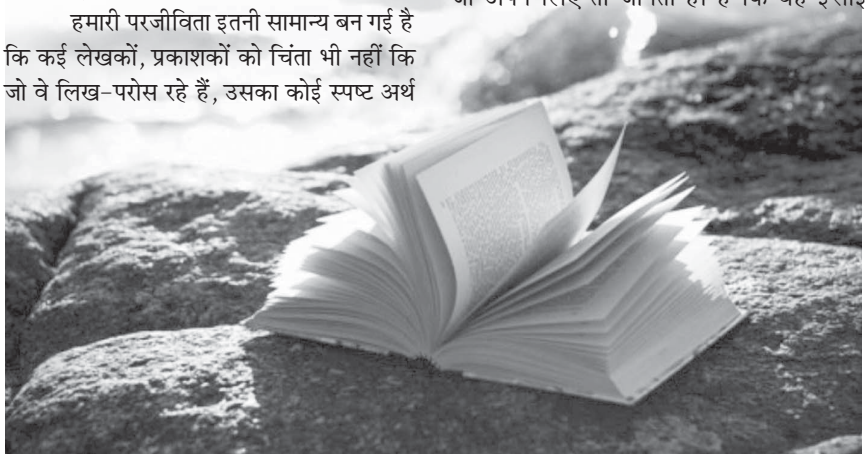

है। उसे क्या लिखना यह तो दूर फार-ईस्ट के देशों के बारे में ही जानने लायक बात है कि वहाँ के लोग मुस्लिम या बौद्ध हैं, ईसाई नहीं। भारतीय लेखकों में ऐसी दृष्टि जाने-अनजाने एक विदेशी दृष्टि के सिवा और क्या है!

इसीलिए यहाँ समाज विज्ञान पुस्तकों/पत्रिकाओं का विवरण भारत के बारे में लिखते हुए भी जिन स्थितियों, समस्याओं की, अच्छी या बुरी जो भी चर्चा करता है वह प्रायः ऑक्सफोर्ड, कैंब्रिज, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालयों के प्रकाशनों या फिर उधर की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में महत्व पाई चीजों तक ही घूमता है। भारत के संबंध में भी कोलोनियलिज्म, नेशनलिज्म, सोशलिज्म, डेमोक्रेसी, कास्ट, दलित, वीमेन, जेंडर, रेन फॉरेस्ट, गुजरात, ह्यूमन राइट्स, सेक्युलरिज्म, मायनॉरिटीज, मल्टीकल्चरिज्म, अरुंधती राय, गे राइट्स, एनवायरमेंट आदि विषय-बिन्दु ही पढ़ने-पढ़ाने के लायक माने जाते हैं। अर्थात यहाँ के बारे में जो पश्चिमी मीडिया या विमर्श का दुराग्रह है। मानो उन चीजों के अतिरिक्त भारतीय छात्रों, लोगों के लिए और विषय महत्वपूर्ण, शिक्षणीय या विचारणीय नहीं हो सकते।

इस प्रकार यहाँ समाज अध्ययन की अधिकांश पाठ्यपुस्तकें अपने ही देश की चिंताओं, मान्यताओं, प्राथमिकताओं तथा यहाँ के चित्त और मानस के प्रति निर्विकार दिखती हैं, इसीलिए उनमें भारतीय चिंतन, अध्ययन और जीवन को कोई स्थान नहीं मिलता या फिर नगण्य स्थान मिलता है, वह भी उस आलोचनात्मक दृष्टि से जैसे पश्चिमी-ईसाई विमर्श उसे देखता है। इसीलिए रामायण के बारे में भी अमेरिकी, यूरोपीय लेखकों के लिखे पाठ हमारे पाठ्यक्रम में हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय इतिहास विभाग के 'मेनी रामायण्स' विवाद में यह उजागर हुआ।

एक स्कूली पाठ्य-पुस्तक में किसी अभ्यास में एक शब्द-पहेली (क्रासवर्ड्स पजल) दी गई है। हिन्दी में प्रस्तुत उस पुस्तक में वहाँ सीधे लिख दिया गया है कि वह पहेली और इसके उत्तर अंग्रेजी में हैं। लेखक-प्रकाशक को परवाह नहीं कि जो लाखों बच्चे हिन्दी या बंगला में पढ़ रहे हैं, वे उस अभ्यास का क्या करेंगे? ऐसे उदाहरण केवल लापरवाही ही नहीं, अपराध भी है क्योंकि हिन्दी और भारतीय भाषाओं में भी शब्द-पहेलियाँ मजे से बनती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित ऐसी पहेलियाँ रहती हैं यानी उन्हें बनाना कोई बड़ा कार्य नहीं है। लेकिन उस हिन्दी पाठ्य-पुस्तक के पाठ के लिए हिन्दी की शब्द पहेली नहीं बनवाई गई, जिसे पूरे वर्ष लाखों बच्चों के लिए उपयोग में आना हो। जबकि समय और साधन की कमी नहीं थी। तब यह किस कारण है?

यह वही चीज है जिसे मोहनदास गांधी ने भी समझा था, जिसे नायपाल ने विभिन्न रूप में कहा है कि हमारा उच्च-आंग्ल-बौद्धिक वर्ग संपूर्ण देश और देशवासियों की चिंता नहीं करता। वह 'हार्ड हर्टेड इंटेलीजेंसिया' है जो मात्र अपने स्वार्थ में मगन है। वह अपनी स्वार्थ पूर्ति को ही राष्ट्रीय कर्म भी मान लेता है और उसी को देश पर थोप देता है। यह वर्ग किसी ऐसे परिवार प्रमुख की तरह आचरण कर रहा है जो अपने काम-धाम, खर्च-वर्च, घूमना-फिरना आदि यह भूल कर करता हो कि उसके घर में पत्नी, बच्चे, बूढ़े माता-पिता भी हैं जो उस पर आश्रित हैं। वह अपने रोजगारदाता तथा सरकार से उनकी आवश्यकता पूर्ति के नाम पर भी अतिरिक्त वेतन और सुविधाएं लेता है। किन्तु उस जिम्मेदारी को भूल कर केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधा के हिसाब से व्यवहार करता है। उसकी पूरी दृष्टि पश्चिमी-भोगवादी, व्यक्तिवादी और दासवत है। वह जाने-अनजाने हर उस बात की चिंता करता है जो सेमेटिक-पश्चिमी दृष्टि की चिंता है। चाहे भारत हो या विश्व के बारे में जैसे, पर्यावरण, विलासितापूर्ण, मात्र भोग-आधारित, असंयमित, अप्राकृतिक जीवन-पद्धति से उसे कोई परेशानी नहीं होती जो भयावह कचरे, प्रदूषण, प्राकृतिक असंतुलन और तरह-तरह की अपरिमित हानियों की जड़ में है। किन्तु यदि लोग देश में दातून प्रयोग करते हैं, नदियों पर दाह-संस्कार करते हैं तो इसे पर्यावरण को नष्ट करने वाला कारक बताया जाता है। अनियंत्रित शहरीकरण, यूज एंड थ्रो वाली मर्मांतक प्रदूषणकारी उपभोग-पद्धति, अनष्टनीय औद्योगिक कचरा, गंदगी का ढेर, शहरों का सीवर नदियों में डालना आदि रोकने की उसे चिंता नहीं, क्योंकि अमेरीकियों को उसकी चिंता नहीं है। बेतहाशा जंगल काटकर धनाढ्य वर्गों और कम्पनियों के लिए नित नए फर्नीचर बनाने, वायुयान, पेट्रोलियम वाहनों की अंधाधुंध वृद्धि रोकने की उसे चिंता नहीं, जो पर्यावरण को सबसे अधिक नष्ट कर रही है।

अर्थात जो सब पश्चिमी-उपभोगवादी जीवन-पद्धति की आवश्यकताएं हैं, उन्हें हमारे बुद्धिजीवी भी स्वभाविक मानते हैं। इसीलिए जब वे वायु, नदी, वन की रक्षा भी करना चाहते हैं तो उसी पश्चिमी सेमेटिक उपभोगवादी, प्रकृति-विरोधी, साम्राज्यवादी दृष्टि से भारत की स्वस्थ, सामंजस्यपूर्ण धर्म-परंपरा से नहीं जो अपनी सहज दृष्टि से प्रकृति-पूजक और चरित्र से ही नदी, पहाड़, पेड़, जीव-जंतुओं का आदर करने वाली है। पर्यावरण तो एक उदाहरण भर है। वस्तुतः अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास जैसे तमाम विषयों में सभी जगह उसी पश्चिमी सेमेटिक दृष्टि से लिखी चीजों का बोलबाला है। हमारा अकादमिक, शैक्षिक विमर्श उसी अंदाज से होता है, इसीलिए यहाँ इसी देश के शास्त्रीय शिक्षा दर्शन, धर्म-परंपरा को आधार मान कर कही गई सुविचारित बातों को भी लांछित किया जाता है। विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, श्री अरविंद, अज्ञेय जैसे बड़े से बड़े मनीषी के विचारों को भी सांप्रदायिक या बेकार कह कर किनारे कर दिया गया है। ऐसी आत्म-विरोधी दृष्टि हमें कहाँ ले जाएगी? अब तक इसका क्या परिणाम हुआ है?

एक परिणाम तो सामने है, देश में मौलिक चिंतन की संभावना कम से कमतर हो गई है, सभी विषयों में स्थिति यह है कि विदेशी भाषाओं के पुराने, नए चिंतन का पहले अंग्रेजी में अनुचिंतन होता है। फिर उसका घटिया अंग्रेजी में अनुलेखन होता है। तब उसका जैसा-तैसा अनुवाद भारतीय भाषाओं में आता है, इसी तीसरे दर्जे की बौद्धिक सामग्री पर हमारी संपूर्ण व्यवस्था पल रही है। उसी से हमारे कर्णधार, शिक्षाविद् पत्रकार, प्रशासक आदि बन रहे हैं। उनमें दर्शन, साहित्य आदि किसी विषय में मौलिक चिंतन से लेकर सामाजिक, राष्ट्रीय समस्याओं से निपटने की क्षमता ही कहाँ से पैदा होगी? ❑

पाठ्यपुस्तकों के बोझ से कुंद होती मौलिकता

आज हमारी शिक्षा व्यवस्था में स्वतंत्रता, अवसर और चुनौती का पूरी तौर पर अभाव है। बात बच्चे की हो या फिर शिक्षक की वे तमाम तरह के दबावों एवं प्रतिबंधों से दबे हुए हैं। पाठ्यपुस्तक उनमें से एक बड़ा कारक है। यही वजह है कि वे उसके दबाव से बाहर निकल नहीं पाते हैं। पाठ्यपुस्तकों में निहित विषयवस्तु को पढ़ाना ही उनके लिए अभीष्ठ है। आज पाठ्यपुस्तकों का अनुसरण करना ही अंतिम लक्ष्य बन गया है। मुक्ति प्रदान करने वाली शिक्षा खुद बांधने वाली बन गयी है। शिक्षक की कोशिश रहती है कि निर्धारित समय में पाठ्यपुस्तक में संकलित विषयवस्तु को बच्चे तक पहुंचा दें और बच्चे का लक्ष्य रहता है कि उसे रटकर परीक्षा में उगल दें।

❑ **बजरंगी सिंह**

शिक्षा के क्षेत्र में यह सर्वमान्य तथ्य है कि बच्चे अपने परिवेश से खुद सीखते हैं, बशर्ते कि उन्हें समृद्ध परिवेश मिले। ऐसे में जरूरी है कि बच्चे को पाठ्यपुस्तकों के दायरे से बाहर निकाला जाए ताकि बच्चे की सृजनशीलता बनी रहे। इसको आज हम स्वीकार करने लगे हैं कि पाठ्यपुस्तकों का बोझ बच्चे को शिक्षा की मौलिक विचारधारा से भटका रहा है तथा उन्हें बोझिल बना रहा है। जिसके कारण बच्चा तनाव में है और किसी बोझ से दबा है तो ऐसे में वह नया नहीं सोच सकता और जब सोच ही नहीं सकता तब रचनात्मकता उसमें कैसे विकसित हो पायेगी। बच्चे का मन बहुत करता है कि खुले में विचरण करे, कल्पनाओं की उड़ान भरे और कुछ नया करे पर अध्यापकों तथा अभिभावकों द्वारा उसे किसी प्रकार से पाठ्यपुस्तक रूपी किले में बन्द कर दिया जाता है। पाठ्यपुस्तक की निर्भरता पर एक आम तर्क है कि जब पाठ्यपुस्तक ही नहीं है तो पढ़ाई कैसे हो पायेगी। यह प्रवृत्ति बच्चे की रचनात्मकता को कुंद करती है। यहां तक कि हमारे शिक्षकों में भी इस बात के लिए नाराजगी होती है कि पुस्तकों के अभाव में क्या और कैसे पढ़ायेंगे?

रचनात्मकता के विकास के लिए यह मान्य सिद्धांत है कि कार्य करने की स्वतंत्रता के साथ अवसर की उपलब्धता तथा चुनौती का होना आवश्यक है। अनेक अन्वेषणों में यह पाया गया है कि जब-जब बच्चों को स्वतंत्रता मिली है, उन्हें कुछ करने के अवसर प्रदान किए गए हैं और उनके सामने चुनौती प्रस्तुत की गयी है तब-तब उनमें रचनात्मकता का विकास अधिक हुआ है। दबाव में रचनात्मकता संभव नहीं है। दबाव भय में परिणित होता है। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि जब मनुष्य तनाव में रहता है तब मस्तिष्क तक जाने वाला रक्त का संचार मेरूदंड के ऊपरी छोर तक ठीक से संचरित नहीं होता। इस कारण मस्तिष्क न ठीक तरीके से सोच पाता है और न ही शरीर के अन्य भागों तक संकेत भेज पाता है। रचनात्मकता के लिए चिंतन का होना जरूरी है और चिंतन हमेशा दबाव रहित परिवेश में गति प्राप्त करता है। यदि बच्चा तनाव में है और किसी बोझ से दबा है तो वह नया कुछ सोच ही नहीं सकता है। जब सोच ही नहीं सकता है तब रचने का सवाल ही नहीं पैदा होता है।

यह जितना बच्चे के संदर्भ में सही है उतना ही बड़ों के भी।

आज हमारी शिक्षा व्यवस्था में स्वतंत्रता, अवसर और चुनौती का पूरी तौर पर अभाव है। बात बच्चे की हो या फिर शिक्षक की वे तमाम तरह के दबावों एवं प्रतिबंधों से दबे हुए हैं। पाठ्यपुस्तक उनमें से एक बड़ा कारक है। यही वजह है कि वे उसके दबाव से बाहर निकल नहीं पाते हैं। पाठ्यपुस्तकों में निहित विषयवस्तु को पढ़ाना ही उनके लिए अभीष्ठ है। आज पाठ्यपुस्तकों का अनुसरण करना ही अंतिम लक्ष्य बन गया है। मुक्ति प्रदान करने वाली शिक्षा खुद बांधने वाली बन गयी है। शिक्षक की कोशिश रहती है कि निर्धारित समय में पाठ्यपुस्तक में संकलित विषयवस्तु को बच्चे तक पहुंचा दें और बच्चे का लक्ष्य रहता है कि उसे रटकर परीक्षा में उगल दें। अधिक अंक पाने का आज इतना अधिक दबाव है कि बच्चे को न खाने और न ही खेलने का समय मिल पाता है। यह दबाव आतंक की शक्ल ले चुका है। शिक्षक भी निश्चित समयावधि में पाठ्यक्रम पूरा करने के दबाव में बच्चे की रुचि, स्वभाव तथा सुविधा का ध्यान नहीं रख पाता। बोझिल शिक्षण विधियों के कारण बच्चे की स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा चिंतन विकसित नहीं हो पाता है। विज्ञान जैसे विषयों के प्रयोग नहीं कराये जाते। उल्टे बिना प्रयोगशाला में गए ही प्रयोग विधि लिखा दी जाती है और बच्चे से रटने के लिए कह दिया जाता है। पाठ्यपुस्तक पर अतिनिर्भरता के चलते दोनों के पास पाठ्यपुस्तक से बाहर निकलने के लिए न अवसर है और न ही स्वतंत्रता। लगता है कि दोनों पाठ्यपुस्तकों के घेरे में इस तरह कैद हो चुके हैं कि उन्हें उससे बाहर निकलने का फिलहाल कोई रास्ता नहीं बचा है।

बच्चे का मन बहुत करता है कि वह खुले वातावरण में विचरण करे। कल्पनाओं की उड़ान भरे और अपनी नजरों से दुनिया देखे एवं समझे और कुछ नया करे किन्तु अध्यापक और अभिभावक द्वारा उसे हांक कर फिर से उसी पाठ्यपुस्तक की दुनिया के घेरे में डाल दिया जाता है। यही नहीं उसे यह एहसास भी बार-बार कराया जाता है कि उसकी सफलता इन्हीं पाठ्यपुस्तकों की परिधि में है। बच्चा मजबूरी में उसी परिधि में सुबह से शाम तक चक्कर लगाने में जुटा रहता है। जितनी पाठ्यपुस्तकें उतनी ट्यूशन कक्षाएं। उससे बाहर निकलने की न उसे फुर्सत है और न ही छूट। हद तब हो जाती है जब पाठ्यपुस्तकों में कहीं-कहीं रचनात्मकता के लिए दिये गये अवसरों को भी शिक्षक द्वारा परीक्षा की दृष्टि से अनुपयोगी करार देकर समाप्त कर दिया जाता है। बच्चे जब अपनी रचनात्मक ऊर्जा के चरम पर होते हैं, परीक्षक के दबाव में उन्हें रचनात्मकता के उन रास्तों को बंद करना पड़ता है क्योंकि परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य है। पाठ्यपुस्तकों से बाहर तो वह न लिख सकता है और न ही पढ़ सकता है। वह परीक्षा में ऐसा उत्तर नहीं दे सकता जो पाठ्यपुस्तक से अलग हो।

यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि पाठ्यपुस्तकों से रटी सूचना के अंक होते हैं किन्तु रचनात्मकता के नहीं। एक बच्चा पाठ्यपुस्तक से ग्रहण जानकारी परीक्षा की उत्तर पुस्तिका पर ज्यों की त्यों उतार देता है। इससे यह समझा जा सकता है कि पाठ्य पुस्तकों पर छात्र की कितनी निर्भरता है। यह प्रवृत्ति बच्चे की रचनात्मकता कुंद करती है। बच्चा ज्ञान निर्माण की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाता है। यह भ्रम भी पैदा कर दिया गया है कि पाठ्य पुस्तक में संकलित सूचना ही अंतिम ज्ञान है।

पाठ्यपुस्तकों की यह दुनिया रचनात्मकता की दुश्मन है। पाठ्यपुस्तकों की इस जकड़बंदी के चलते न अध्यापक और न ही बच्चे की कल्पनाशीलता तथा सूझबूझ उभर पाती है। जबकि रचनात्मकता के लिए कल्पनाशीलता अनिवार्य है। इस बात को महसूस करते हुए गांधी जी सरीखे अनेक शिक्षाविदों ने पाठ्यपुस्तक शिक्षा प्रणाली की वकालत नहीं की है। गांधी जी का मानना था कि पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर रहने वाला शिक्षक अपने छात्रों को रचनात्मकता तथा मौलिकता नहीं सिखा सकता है। पुस्तकों की भाषा बच्चों की सृजनशीलता को क्षति पहुंचा रही है। अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के चलते बच्चे की चिंतन तथा मनन की प्रक्रिया बाधित हो रही है। अंग्रेजी माध्यम का बच्चा पाठ्य पुस्तक को रट तो लेता है पर नया कुछ नहीं जोड़ पाता है। भाषा जो अपनी मातृभाषा नहीं है बच्चे के लिए उसमें चिंतन मनन तथा कल्पना करना संभव नहीं है। ऐसे में बच्चे की मौलिकता कुंद हो रही है।

चुनौती के अवसरों का अभाव भी रचनात्मकता के विकास में एक बड़ी बाधा है आज बच्चों के सामने अध्ययन से जुड़ी चुनौतियां कम होती जा रही हैं। पाठ्य पुस्तकों में आने वाले कठिन स्थानों का समाधान पाने के लिए उनके पास ट्यूशन से लेकर रिफ्रेशर और इंटरनेट जैसे साधन उपलब्ध हैं, जहां वह सब कुछ तैयार मिल जाता है जो उन्हें जरूरी होती है। गलती कर सीखने के अवसर अब बच्चे के पास नहीं रहा।

छोटी सी कठिनाई आने पर बच्चे स्वयं को शिक्षित न करके उक्त माध्यमों की शरण में चले जाते हैं और अपने कठिन प्रश्नों के उत्तर पा लेते हैं। ऐसे में अन्वेषणवृत्ति बच्चे की खत्म हो रही है जबकि खोज ही बच्चे की सृजनात्मकता को बढ़ाती है। गाइड या रिफ्रेशर रचनात्मकता के दुश्मन तो हैं ही साथ ही दकियानूसी, अलोकतांत्रिक एवं अप्रभावी सूचनाओं व तथ्यों को भी बढ़ावा दे रही हैं। बच्चे परजीवी बनते जा रहे हैं। सृजनशीलता के विकास के लिए अवलोकन, खोजना, विश्लेषण के अवसर का होना जरूरी है। बच्चा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जितना अधिक दुनिया को देख समझ सकता है उसमें उतनी अधिक सृजनशीलता के विकास की संभावना होती है। दुनिया को जानने और समझने का सबसे उत्तम तरीका अध्ययन है। पर आज बच्चे पुस्तकों को पढने का बिल्कुल अवसर नहीं पाते वे अपनी पाठ्यपुस्तकों की दुनिया में ही खोये रहते हैं। परिणाम यह हो रहा है कि वे बाहरी दुनिया से बिल्कुल कट जाते हैं। इसलिए बच्चों का बाहरी दुनिया को जानने के लिए अधिक से अधिक प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्हें खुद करने के अवसर दिए जाने जरूरी हैं। उनके सामने चुनौती प्रस्तुत करनी होगी तभी हम उन्हें चिन्तनशील और रचनात्मकता से जोड़ सकेंगे। ❑

(स्वतन्त्र लेखक)

पाठ्यपुस्तकें: एक आवश्यक बुराई

❑ विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पाठ्यपुस्तकों का महत्व शिक्षक से भी अधिक हो गया है। शिक्षक के बिना विद्यालय चल सकता है मगर पाठ्यपुस्तकों के बिना विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ वर्ष पूर्व तक एक विषय की एक से अधिक पाठ्यपुस्तकों का प्रचलन था। विद्यार्थी को पाठ्यपुस्तकों के कुछ विकल्प उपलब्ध होते थे। सरकारों द्वारा पाठ्यपुस्तकों का निशुल्क वितरण की परम्परा के बाद वह समाप्त हो गया है। जिस तरह वनस्पति जगत में वाष्पोत्सर्जन को एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकारा जाता है उसी तरह शिक्षा जगत में पाठ्यपुस्तकों को स्वीकारना पड़ रहा है।

ऋग्वेद को विश्व की प्रथम पुस्तक माना जाता है। कहते हैं कि बारहवीं शताब्दी के अन्त में भारत की समृद्धि से ईर्ष्यावश तुर्क हमलावर बख्तियार खिलजी ने नालन्दा विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में आग लगवाई तब वहाँ इतनी पुस्तकें थी कि उनकी आग कई माह तक जलती रही थी। प्राचीन भारत में पुस्तकों के महत्व को जिस तरह स्वीकारा गया था वह स्थिति आज नहीं रही है। आज विद्यालयों में पुस्तकालय को तभी खोला जाता है जब ऊँचे कमीशन पर खरीदी गई हो और पुस्तकों को उनमें बंद करना हो। विद्यार्थी के जीवन में उनका कोई महत्व नहीं रहा है। महाविद्यालयों में भी पुस्तकालयों का उपयोग औपचारिकता मात्र रह गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि पुस्तकें विद्यार्थी जीवन के बाहर हो गई है। सत्य यह है कि पुस्तकें ही पुस्तकों की दुश्मन हो गई है। पुस्तकों के जिस नए रूप ने सभी पुस्तकों को प्रचलन के बाहर कर दिया है उन्हें पाठ्यपुस्तकें कहते हैं। वर्तमान में अध्ययन नहीं कर परीक्षा उत्तीर्ण करने हेतु पुस्तकें पढ़ी जाती है। परीक्षा की वैतरणी पार करने का सही और सुरक्षित साधन पाठ्यपुस्तकें को मान कर अन्य पुस्तकों से मुँह मोड़ लिया गया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में पाठ्यपुस्तकों का महत्व शिक्षक से भी अधिक हो गया है। शिक्षक के बिना विद्यालय चल सकता है मगर पाठ्यपुस्तकों के बिना विद्यालय की कल्पना नहीं की जा सकती। कुछ वर्ष पूर्व तक एक विषय की एक से अधिक पाठ्यपुस्तकों का प्रचलन था। विद्यार्थी को पाठ्यपुस्तकों के कुछ विकल्प उपलब्ध होते थे। सरकारों द्वारा पाठ्यपुस्तकों का निशुल्क वितरण की परम्परा के बाद वह समाप्त हो गया है। जिस तरह वनस्पति जगत में वाष्पोत्सर्जन को एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकारा जाता है उसी तरह शिक्षा जगत में पाठ्यपुस्तकों को स्वीकारना पड़ रहा है।

अभिव्यक्ति क्षमता की क्षति

पाठ्यपुस्तकों के बढ़ते प्रभाव का परिणाम विद्यार्थियों की अभिव्यक्ति की क्षमता घटने के रूप में सामने आया है। शिक्षा का सीधा उद्देश्य परीक्षा में अंक लाना होगा। परीक्षा में वही आता है जो पाठ्यपुस्तकों में लिखा है। बच्चों को बाल साहित्य या अन्य पुस्तकें पढ़ने से हतोत्साहित किया जाता है क्योंकि वे परीक्षा में सहायता नहीं करती। लिखित परीक्षा में अच्छे अंक लाने के लिए विज्ञान विषयों में प्रायोगिक कार्य भी मात्र औपचारिकता बन कर रह गया। बोर्ड प्रायोगिक परीक्षा में लिखित कार्य के आधार पर अधिकांश विद्यार्थियों को 90 प्रतिशत से अधिक दिए जाते हैं।

स्वतन्त्रता के बाद देश में अनेक बाल पत्रिकाएं निकलती थी मगर इस नीति के कारण एकएक कर बंद हो गई। विद्यार्थी की अभिव्यति की क्षमता बढ़ाने के बजाय प्रश्नोतर रटने का अभ्यास कराना जाता है। इसके चलते ही पासबुक्स का व्यापार पाठ्यपुस्तकों की तुलना में कई गुणा

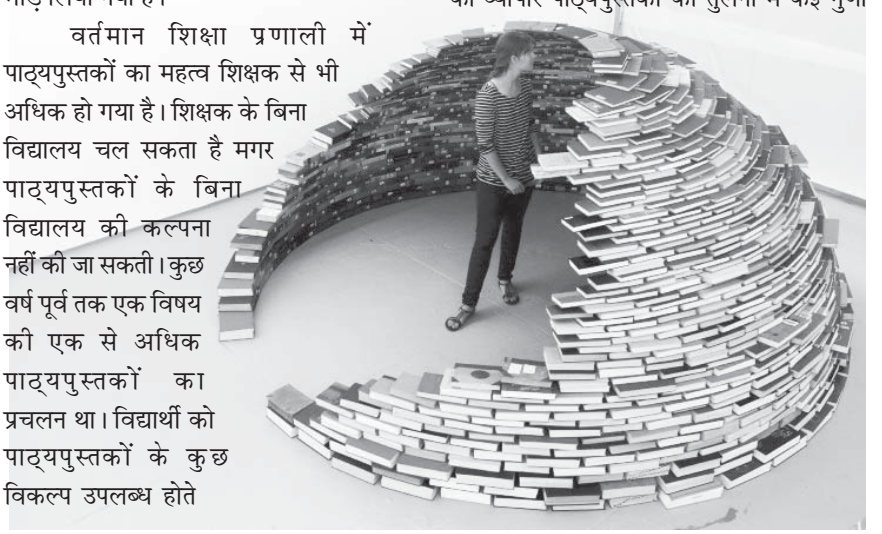

बढ़ गया है। प्राथमिक कक्षाओं की बात छोड़ों, अधिस्नातक स्तर पर भी पासबुक्स पढ़ कर अच्छे अंक लाए जा सकते हैं। इसका विपरीत प्रभाव हमारे सम्पूर्ण तन्त्र पर पढ़ा है। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण अधिकांश स्नातक व अधिस्नातक भी अपने विषय पर पाँच मिनिट भी अधिकारपूर्वक बात नहीं कर सकते। विदेशों में पढ़कर भारतीय अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं मगर देश में पढ़े सामान्यत: नाकाम सिद्ध हो रहे हैं।

पाठ्यपुस्तकें और राजनीति

भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है। यहाँ अनेक विचारधाराओं के लोग रहते हैं। बच्चों को क्या पढ़ाया जाये और क्या नहीं यह तय करने का अधिकार सत्ता में बैठी पार्टी के पास सीमित होकर रह जाता है। इस अधिकार का उपयोग पार्टी विद्यार्थी हित की बजाय अपने हित में करती है। आजादी के बाद बनी कांग्रेस सरकार ने देश के इतिहास को राष्ट्रीयता और वस्तुनिष्ठता से प्रस्तुत नहीं कर अपने हित में प्रस्तुत किया। पाठ्यपुस्तक में बताया गया कि देश को आजादी कांग्रेस ,महात्मा गांधी और नेहरू परिवार के बलिदानों के कारण प्राप्ति हुई। अहिंसक आंदोलन ही स्वतन्त्रता प्राप्ति का एक मात्र कारण था। स्वतन्त्रता संग्राम में क्रांतिकारियों और अन्य राजनीतिक शक्तियों की भूमिका को नकारने का प्रयास किया गया। आजादी के बाद हुए विकास का सारा श्रेय भी नेहरू और गांधी परिवार की झोली में डाल दिया गया। वामपंथियों ने अपने शासन वाले पश्चिम बंगाल में पाठ्यपुस्तकों को साम्यवाद के लाल रंग में रंग दिया। उनके द्वारा तैयार की गई पाठ्यपुस्तकों में छात्रों को यह तो बताया गया कि कभी लाल क्रांति दुनिया के एक तिहाई हिस्से में फैली और उसका श्रेय मार्क्स और ऐंजिल्स की विचारधारा को है। भाजपा ने अपने शासनकाल में इतिहास को सुधारने का प्रयास किया तो उसे पुस्तकों का भगवाकरण करना बताकर विरोध किया गया। भाजपा शासन के बदलने के साथ ही

पाठ्यपुस्तकों को बदल दिया गया।

पाठ्यपुस्तकों से छेड़छाड़ सामान्यत: इतिहास की पुस्तकों तक ही सीमित रही है। पुस्तकों के साथ कई प्रकार के आर्थिक हित भी जुड़े होते हैं अत: इतिहास की बजाय सभी पाठ्यपुस्तकें बदलना शासनकर्ताओं के हित में रहता है। अब स्थिति यह है कि शासन बदलने के साथ ही पाठ्यपुस्तकें बदलने का सिलसिला प्रारम्भ होगया है। जिसे किसी भी दृष्टि उचित नहीं कहा जा सकता।

अच्छे लेखकों का अभाव

शिक्षा का नियन्त्रण सीधे राजनेताओं के हाथ में होने के कारण शिक्षा क्षेत्र के निर्णय भी राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति से होते रहे हैं। इसका प्रभाव यह हुआ कि शिक्षा की रीति-नीति तैयार करने में शिक्षा की समझ वाले लोगों की बजाय राजनेताओं के चहेतों का वर्चस्व बढ़ता रहा है। इस कारण हम अच्छे लेखकों को पुस्तक लेखन से जोड़ने में नाकाम रहे हैं। बच्चों के लिए लिखना बहुत ही श्रमसाध्य व समय लेने वाला कार्य है। उसे बच्चों का खेल मान कर व्यवहार किया जाने लगा है। शिक्षक वर्ग पाठ्यपुस्तकों को नियति मान कर स्वीकार कर लेते हैं। विदेशों में पाठ्यपुस्तक में भूलें प्रकाशित होने पर शिक्षक आन्दोलन तक करते हैं मगर हमारे देश में अभी इतनी जागरुकता नहीं है। कोई बात उठाता भी है तो उसे अनसुना कर दिया जाता है। एकदम लचर पाठ्यपुस्तकें भी वर्षों चल जाती है।

शिक्षक नहीं हो सकती पाठ्यपुस्तकें

वर्तमान पाठ्यपुस्तकों की एक बड़ी कमी उनका आवश्यकता से अधिक महत्वाकांक्षी होना है। विज्ञान की प्रारम्भिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने में देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जयन्त विष्णु नार्लीकर से लेकर अनेक बड़े विद्वानों, अधिकारियों का सहयोग लेने का प्रयास किया गया है। परिणाम यह हुआ है कि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक जानकारी तकनीकी शब्दावली के साथ पाठ्यपुस्तकों डाली गई है। इस कारण विषय वस्तु की दृष्टि से तो पाठ्यपुस्तकें समृद्ध लगती है मगर बालमनोविज्ञान के अनुकूल नहीं है। पुस्तक लेखन में बच्चों को वास्तविक रूप से पढ़ाने वाले शिक्षक की कोई भूमिका नजर नहीं आती। विद्वान लेखक इस बात से प्रसन्न हो सकते हैं कि उन्होने बहुत अच्छी पुस्तक तैयार की मगर बच्चे स्वेच्छा से पाठ्यपुस्तकें पढना तो दूर उन्हें खोलने से परहेज करते हैं। केवल हिन्दी में अनुवाद करना ही पर्याप्त नहीं है। भाषा को क्षेत्रानुसार बच्चों के स्तर तक ले जाना आवश्यक है। केवल अच्छी बुद्धि के पाँच प्रतिशत बच्चों को घ्यान में रख कर तैयार की गई पाठ्यपुस्तकों को सभी

को थमाना कारगर नहीं है। पाठ्यपुस्तकों को भारी बनाने के पीछे प्रशासन का प्रयास राज्य के शैक्षिक स्तर को ऊँचा बताना होता है। शिक्षा बोर्ड द्वारा पूछे गए प्रश्नों के अपेक्षित उत्तर तथा बच्चों द्वारा दिए गए उत्तर में बहुत अन्तर होता है। परीक्षा परिणाम को सही बनाए रखने के लिए घटिया उत्तरों को स्वीकार कर दोहरा मानदण्ड अपनाया जाता है। शिक्षा का स्तर सुधरने की अपेक्षा बिगड़ता ही जारहा है।

आवश्यक है समाधान

यदि हम भारत को विश्व में उचित स्थान दिलाना चाहते हैं तो हमें वनस्पतियों से सीखना होगा। वाष्पोत्सर्जन सम्पूर्ण वनस्पति जगत की एक आवश्यक बुराई है इसका अर्थ यह नहीं कि उसको कम करने के उपाय नहीं किए जाते। वनस्पति जगत में वाष्पोत्सर्जन का सर्वमान्य हल नहीं निकाल कर हर वनस्पति अपनी आवश्यकता व साधनों के अनुसार समाधान करने का प्रयास करती है। हमें भी उसी प्रकार वास्तविकता के धरातल पर समाधान खोजने होंगे। शिक्षा के स्तर को बच्चों की ग्रहण क्षमता के अनुकूल बनाना होगा। पाठ्यपुस्तकें कठिन करने की बजाय अच्छे बच्चों को सहायक पुस्तकें, बालसाहित्य आदि उपलब्ध करा कर आगे बढ़ाना होगा। शिक्षक वर्ग को ऐसा मजबूत करना होगा जो बच्चे को परीक्षा के लिए तैयार करने की बजाय उसमें सीखने की इच्छा जाग्रत कर सके। राजनीति के बजाय राष्ट्रहित में सोचना होगा। बच्चे को विश्वकोष (एनसाइक्लोपीडिया) बनाने का प्रयास व्यर्थ है। पूर्व के किसी अन्य समय की तुलना में आज जानकारी प्राप्त करने के बहुत अधिक साधन उपलब्ध है।

मैं अपनी बात महान वैज्ञानिक आइंस्टीन के जीवन की एक घटना से करना चाहूँगा। आइंस्टीन के एक साथी ने उनसे टेलीफोन नम्बर पूछा। आइंस्टीन उठे, डाइरेक्ट्री से देखकर अपना टेलीफोन नम्बर एक स्लिप पर लिखा और मित्र को पकड़ा दिया। आइंस्टीन के उस व्यवहार से साथी को बहुत आश्चर्य हुआ। उसने पूछा 'क्या आपको अपना फोन नम्बर भी याद नहीं है?'

''मैं वो बातें याद नहीं रखता जो किताबों में आसानी से मिल जाती है।'' आइंस्टीन ने संक्षिप्त उत्तर दिया और फिर अपने काम में लग गए। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक हैं)

परीक्षा दिए बिना पास नहीं किया जाएगा आठवीं कक्षा में

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, राइट ऑफ चिल्ड्रन टु फ्री एंड कम्पल्सरी एजुकेशन (आरटीई) एक्ट, 2009 के तहत कक्षा आठ तक के बच्चों को 'रोके न जाने' (अनुत्तीर्ण न करने) की नीति पर पुर्नविचार कर रहा है। यह अधिनियम, प्रत्येक विद्यार्थी को भले ही उसमें किसी कक्षा को पास करके अगली कक्षा में पहुंचने की योग्यता हो या न हो, कक्षा में यूं ही पास होने का अधिकार प्रदान करता है।

सूत्रों ने कहा कि मंत्रालय ने हरियाणा की तत्कालीन शिक्षा मंत्री गीता भुक्कल की अध्यक्षता वाली कमेटी की वह रिपोर्ट ढूंढ निकाली है, जिसने आरटीई एक्ट को संशोधित करने की सिफारिश की थी। जून 2012 में गठित की गयी इस कमेटी ने वार्षिक परीक्षा वाली पुरानी पद्धति पर वापस लौटने की सिफारिश की है क्योंकि स्वत: ही पास हो जाने की नीति से बच्चों की पढ़ाई बुरी तरह प्रभावित हुई है।

चूंकि आरटीई एक्ट विद्यार्थियों को अनुत्तीर्ण किये जाने तथा विधिवत परीक्षा देने या फिर अनुत्तीर्ण करने की अनुमति नहीं देता, कमेटी से कहा गया था कि वह सुझाव दे कि सत्र के अंत में बच्चों को अगली कक्षा में भेजने से पूर्व उनके मूल्यांकन के लिए किस प्रकार की मूल्यांकन व्यवस्था संभव है। कमेटी के विचार से परीक्षा की पुरानी पद्धति सर्वोत्तम पद्धति है। आरटीई कानून में छात्रों के सतत एक समग्र मूल्यांकन अर्थात कॉन्टीन्यूअस एण्ड कॉम्प्रेहैन्सिव इवैल्युएशन (सीसीई) का प्रस्ताव रखा गया था, जिसके अनूसार किसी भी छात्र को किसी भी कक्षा में रोका नहीं जाएगा चाहे उसका शैक्षणिक प्रदर्शन कैसा भी हो। अधिकांश राज्यों ने केन्द्र सरकार से कहा था कि इस व्यवस्था को खत्म कर दिया जाना चाहिए क्योंकि इससे विद्यार्थियों के प्रदर्शन में अपेक्षित सुधार नहीं हो रहा था। वे भुक्कल समिति की सिफारिशें लागू करने पर जोर दे रहे थे। जिसमें शिक्षाविद् व आम जनता के प्रतिनिधि भी शामिल थे। यह कमेटी सेन्ट्रल एडवायजरी बोर्ड ऑफ एजुकेशन (सीएबीई) ने गठित की थी जो कि शिक्षा की सर्वोच्च निर्णयकारी समिति है, क्योंकि कई राज्यों ने सीएबीई की बैठक में कानून के उस भाग पर विरोध जताया था जिसके अनुसार किसी को भी सामने नहीं किया जा सकता था।

राज्यों को लगता था कि विद्यार्थी के प्रदर्शन के सतत् मूल्यांकन के लिए किसी को भी अनुत्तीर्ण नहीं करने की नीति के क्रियान्वयन पर कुछ भी स्पष्ट नहीं है और ऐसी स्थिति में स्कूल ऐसे अशिक्षित विद्यार्थी तैयार कर रहे हैं जो साल दर साल अगली कक्षा में पहुँचने के बाद भी ना तो पढ़ सकते हैं ना ही लिख सकते हैं।

भुक्कल समिति की रिपोर्ट का कहना है कि अनुत्तीर्ण होने के बाद भी कक्षा आठ तक लगातार अगली कक्षा में क्रमोन्नत करने की नीति से विद्यार्थियों की योग्यता घट रही है। समिति स्तब्ध थी कि कक्षा 3 के 60 प्रतिशत बच्चे कक्षा एक के बच्चों के लिए निर्धारित किताब भी नहीं पढ़ सकते थे। सरकारी स्कूलों की स्थिति तो बहुत खराब थी क्योंकि उनकी 68 प्रतिशत बच्चे पढ़ नहीं सकते थे। रिपोर्ट कहती है कि यह एक चेतावनी है और अनुत्तीर्ण नहीं करने की नीति से छात्रों व उनके माता-पिता को गलत संदेश मिलता है। रिपोर्ट के अनुसार माता-पिता बच्चों की पढ़ाई में कोई रुचि नहीं लेते हैं क्योंकि बच्चे भले कुछ सीखें या ना सीखें वे अगली कक्षा में चले जाते हैं। रिपोर्ट के अनुसार गणित में विद्यार्थियों का प्रदर्शन तो बेहद खराब था क्योंकि मात्र 25.6 प्रतिशत ही साधारण से गुणा-भाग के सवाल कर सके थे। राज्य सरकारों ने शिकायत की है कि व्यवस्था छात्रों को कक्षा में अनुपस्थित रहने के लिए प्रेरित करती है। साथ ही 2012 में प्राथमिक स्कूल से पढ़ाई छोड़ने वालों की संख्या 73.1 प्रतिशत थी। 2013 में इसमें मामूली गिरावट आई और यह संख्या 71.8 दर्ज की गयी। राज्य इसके बाद कुछ भी करने में समर्थ नहीं है क्योंकि आरटीई केन्द्रीय कानून है और आरटीई के पूर्ण क्रियान्वयन के लिए पैसा भी केन्द्र सरकार से आता है।

Importance of Books in Education

Development of a person should be thought of scientifically considering books to be read by the concerned. Traits of interest should be watched carefully to allow and inculcate skill development as per natural growth of the fellow. Application of Psychology along with other observations when applied scientifically may help better grooming of the native. These points if given due importance while selecting proper books to educate in right manner is vitally important.

❑ **Prof. A. K. Gupta**

Books as we know are best friends, but at the same time they should be correct to progress oneself in right direction. A student expects syllabus and text books as first requisite to make efforts for the study. We know that books make strong concept which are more important for tender minds to respond to the typical questions one is expected to face. Books are more authentic than internet search which may prove to be fatal in certain cases e.g. Steel Plant when translated using Google search may result in "Steel Ka Paudha" as cited by Ma. Suresh ji Soni. More and more controversy leads to no conclusion when discussion starts regarding History. However it's very clear that origin lie in the facts that leads to beginning of the era with traditional Hindu culture in our mother land. Often it is twisted and presented in different form which is otherwise. Books provide us knowledge on different subject covering all the fields in the life. It's basically selection of the right books in sequence to read and progress smoothly where one needs a guide/ teacher to show right path. Thus a person first becomes literate and then educated and learned. Overall personality development is possible with right set of books read in correct order at right time. A Good book is best of friends, the same today and forever-Martin Tupper.

Books are available on various subjects covering all fields one can think of: History, Geography, Economics, Languages, Music, Photography, Painting, Cooking, Sports, Autobiography, Legal, Technical, Commerce, Politics, Management, Astronomy, Astrology, Astrophysics, Science, Dictionaries to name a few. Books finds latest additions in the form of journals on again different subjects, supplemented by Newsletters/ Papers etc. Medium of Language becomes a point of discussion. Translation from one language to another may lose its proper meaning the author wishes to convey. Train when termed in Hindi as "Loh Path Gamini" is a typical example of this effect. It is very simple to ask teaching of a subject in any particular language but its effects should be thought of in advance and taken care of properly. In general It may be easier for teacher and taught to follow mixed mode of language for better and effective communication rather than following a typical medium which may not be easier to either of them, e.g. in technical education calling a Beam is easier then calling the same object as "Dharan".

Global competition demands fa-

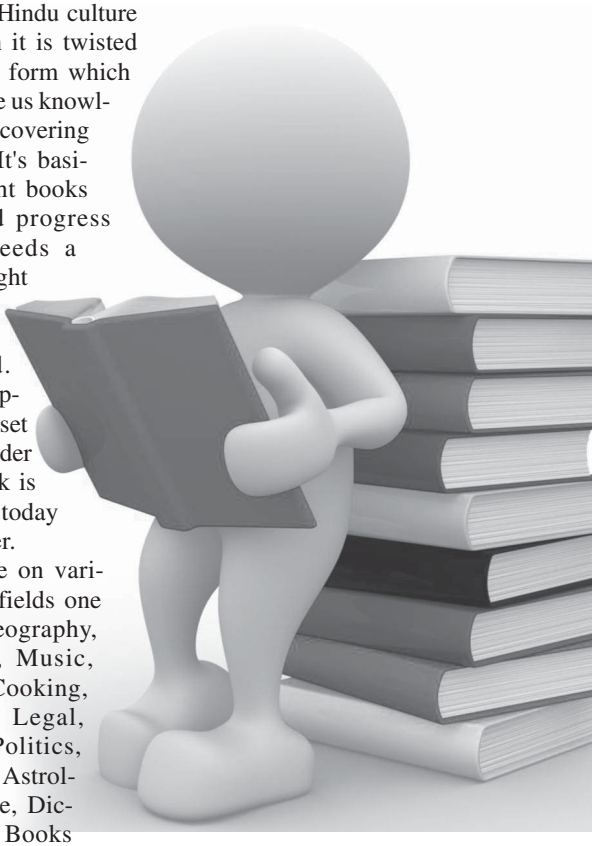

miliarity with some international language but implementation part requires communication with work force in local medium. Thus for a person to become a professional, knowledge of Multilanguage of the subject may be a prerequisite.

Development of a person should be thought of scientifically considering books to be read by the concerned. Traits of interest should be watched carefully to allow and inculcate skill development as per natural growth of the fellow. Application of Psychology along with other observations when applied scientifically may help better grooming of the native. These points if given due importance while selecting proper books to educate in right manner is vitally important.

Development of books in desired medium if not available in plenty have to be undertaken either by translation or wrighting afresh. Matters of Copy right may be taken care of properly. Incase if right words are difficult to follow one should not hesitate to adopt these words as such for ease of communication as has been in case of English.

Interpretation is very important e.g. one may read "Dhor Ganwar Shudra Pashu Nari, Sakal Tadan ke Adhikari...." may be understood as Tadna or Tarna where some of them have different meanings, i.e. Tadna means scolding or Cursing and Tarna means To support morally or otherwise for their success. In Astrophysics Theory of Big Bang for Origin of Universe has similar support as for steady state theory. Discussion over existence of GOD remain eternal and inconclusive, of course now scientific proof have explored in favour existence of GOD i.e. Supreme Power. Research for GOD particle will prove to be a milestone in this direction.

Awareness is very important as one may develop a particular subject for earning but has to know in general about many things in one's own surroundings for better understanding and existence of self in dynamic world. Thus books may be supplemented by many other means e.g. TV, Internet, News paper or letter etc. Explosion of knowledge on any of the medium may be used but with utmost care e.g. relying on Wikipedia blindly may lead to wrong concepts or information since its editing is possible by anyone who has account on it.

Using journals may be very expensive in hard or soft copy. Copyright has restricted use of latest information in public domain. Popularity gained through publication of high quality articles has earned them higher index points which in turn leads to higher circulation number and demand. Looking to this there are houses which provide publication of articles in popular journals or proceedings of seminars organised by these houses. Thus market forces govern the trends and not social requirement which prevails. This may be dangerous in progress of the society in correct direction. Thus Environment, Ethics, Sustainability, Cultural Traditions etc should be given proper consideration.

Cultural development in early stages of life is a key factor in forming strong beliefs in one's life that's why effluent people prefer to get their children or wards study in influential Schools here in India or Abroad.

Indian Culture is unique in that manner. With Scientific approach in every walk of life and working betterment of everybody in the universe remain prime objective, e.g. Enchanting Vasudeva Kutumbkama, Sarve Bhavantu Shukhin... reflect this concept. Guru Shishya Parampara, Honour for elders, Working for Natural resources e.g. cow or Cow Samvardhanam, Recycling i.e. using again and again by consumption of such materials e.g. Pattals/ Duana/ Kulhads etc.

Our achievements in spiritual direction is well known to the entire world. Existence of Consciousness beyond physical form is worth mentioning. Now films are available which show nano structure of the material and life similar to a cell and as we move in other direction we find similar pattern searching boundaries of the universe or cosmos.

It is enlightenment which is more important one should learn and achieve for self elevation. It is now well established that whatever manner we treat somebody the same comes back to us. Existence of Mankind is a big innovation that the GOD has created in the Universe has also equipped us to find its trends through occult sciences.

Therefore it is duty of all of us to teach our younger generation to move in right direction, where books can prove to be useful asset. Reading a book and learning with experience of practical life by following the knowledge given in the books makes this complete learning. Merely Reading may not make learning complete. Need of a good teacher cannot be under estimated since a right guidance is always necessary to find correct path.

Duty of Policy maker is more since they form the path for others to follow. They should focus on requirement of the disciple and teacher in the wider interest of the society. Self Respect and Respect for others should remain key points in any learning. Work for the nation and humankind should be our prime objective. A Good Book is the precious life blood of a master spirit, embalmed and treasured up on purpose to a life beyond life- Milton.❑

(Professor, Structural Engineering Department, JNV University, Jodhpur)

वर्तमान पाठ्यपुस्तकें - स्थिति और सम्भावनाएँ

❑ डॉ. रेखा भट्ट

प्रचलित पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों पर वृहद शोध होने की आवश्यकता है, जिससे शिक्षा केवल शिक्षण संस्थापकों व पुस्तक प्रकाशकों द्वारा लाभ का साधन न बनें और शिक्षा व्यवसाय न बने। पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थी के लिए शिक्षा का शक्तिशाली माध्यम बनें और शिक्षा विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास तथा सामाजिक उत्कर्ष का साधन बनें। भारतीय मूल्यों से परिपूर्ण शिक्षा द्वारा ही विश्व में अपनी पहचान बनाये रखना सम्भव होगा। धर्मार्थ संस्था (मिशनरीज), किसी वर्ग विशेष द्वारा संचालित विद्यालयों या निजी संस्थाओं में प्रचलित पाठ्यपुस्तकें बालकों में राष्ट्र के प्रति व्यापक सोच का निर्माण नहीं कर सकती है। अतः यह हमारी नैतिक जिम्मेदारी है कि हम पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थियों को भारत के गौरवमयी इतिहास और हमारी सनातन विशिष्ट संस्कृति से अवगत करायें।

स्वतंत्रता के पश्चात् 65 वर्षों से प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली से पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों को एकदम से अलग किया जाना असम्भव है। पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थियों में किसी भी विषय की समझ विकसित करने और विचार निर्माण का कार्य करती है। पाठ्यपुस्तकें आधुनिक शिक्षा प्रणाली का आवश्यक अंग बन चुकी है।

वर्तमान में शिक्षा के वैश्वीकरण के पश्चात् भी हर देश की शिक्षा प्रणाली की अपनी अलग पहचान है। पाठ्यपुस्तकें राष्ट्र के दृष्टिकोण को परिलक्षित करती है। शिक्षा ही देश की सामाजिक सहिष्णुता को पुष्ट करती है। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यपुस्तकें किसी विशेष सामाजिक मान्यताओं और अभिरुचियों को दर्शाने वाली न हो। हमारी पाठ्यपुस्तकें किसी बाहरी तंत्र से प्रभावित न हों।

किसी भी देश में शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षण व शिक्षण सामग्री पर होने वाला खर्च वहाँ के आर्थिक विकास, सामाजिक आवश्यकता और जनसंख्या भार पर निर्भर करता है। यह महत्वपूर्ण है कि राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली में सम्मिलित पाठ्यक्रमों एवं पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से हम विद्यार्थियों को अपने देश व पूरी दुनिया के बारे में क्या पढ़ाते हैं। विद्यालय राष्ट्र निर्माण की संस्था है। अतः यहाँ संचालित पाठ्यक्रमों एवं उसमें सम्मिलित पाठ्यपुस्तकों का सर्वाधिक महत्व है।

धर्मार्थ संस्था (मिशनरीज), किसी वर्ग विशेष द्वारा संचालित विद्यालयों या निजी संस्थाओं में प्रचलित पाठ्यपुस्तकें बालकों में राष्ट्र के प्रति व्यापक सोच का निर्माण नहीं कर सकती है। अतः यह हमारी नैतिक जिम्मेदारी है कि हम पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से विद्यार्थियों को भारत के गौरवमयी इतिहास और हमारी सनातन विशिष्ट संस्कृति से अवगत करायें।

वेद, उपनिषद् और पुराण - सर्वकालिक ज्ञान के अथाह स्त्रोत है। शाश्वत व सामाजिक मूल्यों से भरपूर हमारे महाकाव्यों को पाठ्यपुस्तकों का भाग बनाये जाने पर ही इनमें निहित मूल्य जन-मानस में स्थापित हो सकेंगे। भारतीय वातावरण और संस्कृति में रची-बसी लोक कथाएँ, लोक-गीत जीवन के लिए आवश्यक नैसर्गिक ज्ञान का भण्डार है। विदेशी कहानियों व कविताओं के स्थान पर साहित्य व नैतिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकों में इनको स्थान प्रदान कर विद्यार्थियों में हो रहे मूल्यों के क्षरण को रोका जा सकता है। प्राथमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों में हितोपदेश, पंचतंत्र की कथाएँ बच्चों की कल्पनाओं और उम्मीदों को नई उड़ान देगीं। प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित पाठ्यपुस्तकों को भारतीयता से पूर्ण करके ही हम भारतीय शिक्षा को सार्थक स्वरूप प्रदान कर सकेंगे।

उच्च प्राथमिक तथा माध्यमिक स्तर के

छात्रों के लिए पाठ्यपुस्तकें मार्गदर्शिका का कार्य करती है। इस स्तर पर बालक अपने अनुभव व विचारों को मस्तिष्क में ठोस धरातल पर सदैव के लिए संकलित करता है। अत: पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से उसे भारत की आध्यात्मिक चेतना, ध्यान व योग का परिचय करवाया जाए। पर्यावरणीय चेतना, जैव विविधता का संरक्षण तथा मानव सेवा जैसे पक्षों से युक्त पाठ्यपुस्तकों के अध्यापन से हम मानसिक विकृतियों और अपराधिक प्रवृत्तियों तथा सोशल मीडिया द्वारा हो रहे मूल्यों के क्षरण से भावी पीढ़ी को बचा सकेंगे।

केवल पाठ्यपुस्तकों पर आधारित शिक्षा में स्वत: स्फूर्त गुणों का विकास करने के विकल्प नहीं होते है। अत: बालकों में अपनी रुचि व कौशल का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। यदि पाठ्यपुस्तकों में अलग से बालकों की सृजनात्मकता व विचार शक्ति को बढ़ाने के उपाय होंगे तो उनमें स्वत: कलात्मकता, लेखन व सृजन शक्ति का विकास होगा। उन्हें भावी जीवन में कई उचित अवसर प्राप्त हो सकेंगे। रचनात्मक पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों द्वारा विद्यार्थियों को समाजोपयोगी, परम्परागत कलाओं व हस्तशिल्प की जानकारी और प्रशिक्षण प्रदान करने से, मशीनी व तकनीकी युग में नष्ट होती समृद्ध स्थानीय कला और दक्षता को बचा सकते हैं।

वर्तमान पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों ने बालकों को केवल प्रतियोगिताओं और परीक्षाओं में उलझा रखा है। इसलिए आवश्यक है कि पाठ्यपुस्तकें ऐसे पाठ्यक्रम पर आधारित हो जो विद्यार्थी में सम्पूर्ण क्षमता और योग्यता का आंकलन कर सकें। केवल स्मरणशक्ति आधारित परीक्षा उत्तीर्ण करने के स्थान पर बौद्धिकता, तार्किकता व वस्तुनिष्ठता की परख भी आवश्यक है।

वर्तमान पाठ्यक्रम में पर्यावरण सम्बन्धी पाठ्यपुस्तकें तो है किन्तु इसके संरक्षण हेतु आवश्यक संवेदनशीलता एवं जनचेतना का अभाव है। इसी तरह नैतिक शिक्षा की पाठ्यपुस्तकें है, किन्तु मानवता की सेवा द्वारा जरूरतमन्द लोगों की जिन्दगी में सकारात्मक बदलाव लाना ज्यादा प्रभावशाली होता है। अत: पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों में पर्यावरण, मानवता, स्वरक्षा, प्राकृतिक कृषि जैसे पक्षों की क्रियान्विति का निर्देशन किया जाना उपयोगी होगा।

पाठ्यपुस्तकें ऐसे पाठ्यक्रम पर आधारित हो जो विद्यार्थी की सम्पूर्ण योग्यता का आंकलन कर सके, केवल नियमित विषयों के पाठ्यक्रम पूर्ण कर लेने तक सीमित न रहे। प्राथमिक शिक्षा के बाद से ही पाठ्यपुस्तकों को विस्तृत किन्तु वर्गीकृत करने की आवश्यकता है तथा सभी सामान्य परीक्षाओं (बोर्ड) को प्रतियोगी परीक्षाओं के समान विकसित करने से विद्यार्थी एक ही दिशा में प्रयत्न करेंगे। इससे अनावश्यक कोचिंग या ट्यूशन के आर्थिक भार से व समय व्यर्थ होने से मुक्ति मिलेगी। विद्यार्थी सामाजिक गतिविधियों व अन्य अभिरुचियों में समय दे सकेंगे।

आज शिक्षा संस्थान सबसे अधिक आय कमाने के साधन बन गये हैं। इनमें अल्प प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा सीमित पाठ्यक्रम पूर्ण करवाकर एवं अनेक प्रकार की हॉबी कक्षाएँ एवं गतिविधियाँ चलाकर उसे उच्च श्रेणी के मानदण्डों पर स्थापित किया जाता है। तकनीकी युक्त होने के कारण, दृश्य श्रव्य माध्यम से केवल जानकारी व सूचनाएँ उपलब्ध करवायी जाती है। इस तरह की शिक्षण प्रणाली से हमारी वाचिक परम्परा द्वारा मुखाग्र शिक्षा एवं लेखन का अभ्यास समाप्त होता जा रहा है। नेटवर्क पर अत्यधिक निर्भरता ने पुस्तकालयों का उपयोग कम कर दिया है, कितने ही समृद्ध पुस्तकालय केवल पुस्तकों के अवलोकन केन्द्र बनकर रह गये हैं।

प्रचलित पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों पर वृहद शोध होने की आवश्यकता है, जिससे शिक्षा केवल शिक्षण संस्थापकों व पुस्तक प्रकाशकों द्वारा लाभ का साधन न बनें और शिक्षा व्यवसाय न बने। पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थी के लिए शिक्षा का शक्तिशाली माध्यम बनें और शिक्षा विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास तथा सामाजिक उत्कर्ष का साधन बनें। भारतीय मूल्यों से परिपूर्ण शिक्षा द्वारा ही विश्व में अपनी पहचान बनाये रखना सम्भव होगा।❑

(व्याख्याता, रसायन शास्त्र, राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान)

शैक्षिक गुणवत्ता का आधार पाठ्यपुस्तकें

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

युगों-युगों से राष्ट्र निर्माण का निरूपण पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से होता रहा है। इसीलिये कहा गया है कि विचार सम्प्रेषण के विविध साधनों में पुस्तक ही ऐसा सशक्त साधन है जो संस्कृति के घटक-जीवनमूल्य, जातियों के अस्तित्व की विशेषताएं, मानव का विकास, देशकाल, धर्म, संस्कृति, इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है। यह कहा जा सकता है कि शिक्षा साध्य है तो पाठ्यपुस्तकें साधन है। देश की भावी पीढ़ी का निर्माण, देशभक्तिपूर्ण गीत, कविता, कहानी, चरित्र वर्णन से देशप्रेम की भावना जाग्रत होती है। पाठ्यपुस्तकों की सहायता से कई वैज्ञानिक, साहित्यकार, चिंतक, देश के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़े हैं।

प्राचीन काल से ही पाठ्यपुस्तकें राष्ट्र निर्माण की संकल्पना को जीवंत बनाये हुये है। पाठ्यपुस्तकों के द्वारा भारतीय परम्परा, संस्कृति, ग्रंथ, साहित्य, राष्ट्र निर्माण में सहायक सिद्ध हुये हैं। पाठ्यपुस्तकों में महापुरुषों के जीवन चरित्र की समाहितता विद्यार्थियों के लिये प्रेरणा स्त्रोत होती है। इनको पढ़ने से महापुरुषों का चित्रण हमारे मन मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव छोड़ता है। महापुरुषों की जीवन आदर्शों का ज्ञान प्राप्त कर छात्र में राष्ट्र के प्रति निष्ठा पैदा होती है। पाठ्यपुस्तकों में देश के ऐतिहासिक स्थलों का वर्णन, उनकी प्रासंगिकता, प्राकृतिक संपदा, नदियाँ, पर्वतों, खनिज पदार्थों, अभ्यारण्य, तीर्थ स्थानों के बारे में सम्पूर्ण जानकारी मिलती है, जिन्हें जानकर पर्यटन की मानसिकता बनती है। सशक्त पाठ्यपुस्तकों और अध्यापक द्वारा प्रभावी सम्प्रेषण का मिश्रण छात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व को इस प्रकार गढ़ देता है कि वह संकीर्ण दायरे से बाहर आ जाता है। अभिव्यक्ति कौशल का विकास पुस्तकों के अध्ययन से संभव है। महान रचनाकारों के भावों का आनन्द उनकी लिखित पुस्तकों को पढ़कर लिया जा सकता है। विद्वान रस्किन ने लिखा है कि आदर्श काव्य ग्रन्थ शब्दशः नहीं वरन् अक्षरशः पठनीय होते हैं। क्योंकि पुस्तकों में वर्णित ज्ञान स्थायी तथा उपयोगी होता है।

पाठ्यपुस्तक की रचना चाहे किसी भाषा में हो सभी में देश-विदेश के महत्त्वपूर्ण स्थानों, पर्व, परम्पराओं, खानपान, वेशभूषा, व्यापार, उद्योग धन्धों की जानकारी होती है। इनके अध्ययन से कबीर, सूर, तुलसी, रसखान, नानक, बिहारी जैसे महान कवियों की प्रेरणास्पद पंक्तियों से नवस्फूर्ति का संचार होता है। इसी प्रकार नारी का सम्मान, नारी के चरित्र की गाथा यथा साकेत की उर्मिला, यशोधरा की यशोधरा, प्रिय प्रवास की राधा, रामायण की सीता, गोदान की धुनिया, चन्द्रगुप्त की अलका, महारानी लक्ष्मीबाई जैसी नारियों की चरित्र गाथा हमें नारी शक्ति के प्रति श्रद्धा के भाव पैदा करती है। यही नहीं पाठ्यपुस्तकों से ईदगाह, होली, दीपावली, रक्षाबन्धन, क्रिसमस दिवस के पाठों को पढ़कर विभिन्न धर्मों की जानकारी मिलती है। वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना जाग्रत होती है। युगों-युगों से राष्ट्र निर्माण का निरूपण पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से होता रहा है। इसीलिये कहा गया है कि विचार सम्प्रेषण के विविध साधनों में पुस्तक ही ऐसा सशक्त साधन है जो संस्कृति के घटक-जीवनमूल्य, जातियों के अस्तित्व की विशेषताएं, मानव का विकास, देशकाल, धर्म, संस्कृति, इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है। यह कहा जा सकता है कि शिक्षा साध्य है तो पाठ्यपुस्तकें साधन है। देश की भावी पीढ़ी का निर्माण, देशभक्तिपूर्ण गीत, कविता, कहानी, चरित्र वर्णन से देशप्रेम की भावना जाग्रत होती है।

पाठ्यपुस्तकों की सहायता से कई वैज्ञानिक, साहित्यकार, चिंतक, देश के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़े हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनके फोडे के ऑपरेशन हेतु जब चिकित्सक ने उन्हें बेहोश करना चाहा तो उन्होंने चिकित्सक को कहा कि मुझे मेरी गीतांजली दे दो, मैं पढ़ता रहूँगा, आप आपरेशन कर लेना और ऐसा ही हुआ। यह पुस्तकों के महत्त्व को दर्शाता है। प्राचीन काल से ही पुस्तकों का महत्त्व निर्विवाद रहा है। पाठ्यपुस्तकें पढ़ते समय व्यक्ति धीमे-धीमे अध्ययन करता है। ऐसा करने से ही उसके बौद्धिक क्षुधा की निवृत्ति होती है। यही नहीं उसकी चिन्तन शक्ति का भी विकास होता है। एक विद्वान ने कहा है कि मैं नरक में भी पुस्तकों का स्वागत करूंगा। लार्ड बैकन ने कहा है कि -Some books are to be tasted, others to be swallowed and few to be chewed and digested अर्थात कुछ पुस्तकें मात्र चखने के लिये होती हैं। कुछ निगलने के लिये होती है, लेकिन कुछ पुस्तकों को चबाचबाकर, पचाया जाता है।

संक्षेप में सार यह है कि-

- पाठ्यपुस्तकें छात्रों/शिक्षकों के लिये संदर्भ के लिये आवश्यक है।
- पाठ्यपुस्तकों में व्यवस्थित, प्रामाणिक तथा सटीक जानकारी होती है।
- मौखिक ज्ञान विस्मृत हो सकता है, परन्तु, पाठ्यपुस्तकों में छपा हुआ पढ़ने पर ज्ञान स्थायी रहता है।
- पाठ्यपुस्तकें छात्र की परीक्षा उत्तीर्ण करने में सहायक होती है।
- पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्यपुस्तक का निर्माण होता है, जो विद्यार्थियों के लिये परीक्षापयोगी होती है। ❑

(कोषाध्यक्ष, अ.भा.रा.शै.महासंघ)

संस्कृत और संस्कृति

❑ संजय गुप्त

मुगल शासन के पहले तक संस्कृत पठन-पाठन का माध्यम होने के साथ-साथ भारतीय समाज में खूब प्रचलित थी, लेकिन अरबी-फारसी के बढ़ते प्रभाव के बीच संस्कृत हाशिये पर जाती रही। मुगल शासन में राजकाज की भाषा अरबी-फारसी थी और यह स्वाभाविक है कि जिस भाषा को शासकीय सहयोग-संरक्षण मिलता है वह अन्य भाषाओं की तुलना में कहीं अधिक तेजी से फलती-फूलती है। जहां तक हिंदी का सवाल है तो वह वैदिक भाषा का ही परिष्कृत रूप है। संस्कृत, पाली, प्राकृत से लेकर देवनागरी लिपि तक का उसका सफर सदियों पुराना है। हिंदी आज जिस मुकाम पर है उसे देखते हुए वह एक बड़ी हद तक भारतीय संस्कृति की पहचान बन गई है। किसी भी अन्य देश की तुलना में भारत भाषाओं के मामले में कई जटिलताओं से भरा हुआ है। जिस देश में चार कोस पर भाषा बदल जाने की मिसाल दी जाती हो वहां ऐसी जटिलताएं स्वाभाविक ही हैं।

केंद्रीय विद्यालयों में जर्मन भाषा की जगह संस्कृत पढ़ाए जाने के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के फैसले ने एक नई अकादमिक बहस को जन्म दे दिया है। बहस सिर्फ इसी पर नहीं हो रही है कि जर्मन की जगह संस्कृत को क्यों अपनाया गया, बल्कि इस पर भी कि मानव संसाधन विकास मंत्री स्मृति ईरानी ने यह फैसला बीच सत्र में क्यों लिया? इस विषय पर सवाल उठने का एक कारण केंद्र में भाजपा की सरकार का होना भी है, क्योंकि इस फैसले को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जोड़कर देखा जा रहा है। संघ एक लंबे अर्से से शिक्षा व्यवस्था में संस्कृत को महत्व देने पर जोर देता रहा है। संघ के एक प्रचारक ने केंद्रीय विद्यालयों में तीसरी भाषा के रूप में संस्कृत को शामिल करने के फैसले का समर्थन करते हुए यह कहा कि भारत और संस्कृत एक-दूसरे के पर्याय हैं और इस भाषा को जाने बिना कोई भी भारतीय कैसे हो सकता है? इससे असहमत नहीं हुआ जा सकता कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधार संस्कृत भाषा ही है। जिन वेद, उपनिषद जैसे ग्रंथों को भारत की पहचान माना जाता है वे संस्कृत भाषा में ही लिखे गए हैं और कोई भी इस भाषा को जाने बिना उनके मर्म को नहीं समझ सकता है।

समय के साथ जैसे-जैसे संस्कृत का प्रसार कम होता गया वैसे-वैसे वेद-उपनिषद भी लोगों की स्मृति से ओझल होते गए। परिणाम यह हुआ कि जो ज्ञान इन ग्रंथों में है उसका पूरा लाभ समाज को नहीं मिल पा रहा है। संस्कृत की अपनी कुछ जटिलताएं हैं, लेकिन दुनिया में ऐसी कौन सी भाषा है जिसमें कुछ जटिलताएं न हों। संस्कृत ने धीरे-धीरे अपनी पहचान खोई है। मुगल शासन के पहले तक संस्कृत पठन-पाठन का माध्यम होने के साथ-साथ भारतीय समाज में खूब प्रचलित थी, लेकिन अरबी-फारसी के बढ़ते प्रभाव के बीच संस्कृत हाशिये पर जाती रही। मुगल शासन में राजकाज की भाषा अरबी-फारसी थी और यह स्वाभाविक है कि जिस भाषा को शासकीय सहयोग-संरक्षण मिलता है वह अन्य भाषाओं की तुलना में कहीं अधिक तेजी से फलती-फूलती है। जहां तक हिंदी का सवाल है तो वह वैदिक भाषा का ही परिष्कृत रूप है। संस्कृत, पाली, प्राकृत से लेकर देवनागरी लिपि तक का उसका सफर सदियों पुराना है। हिंदी आज जिस मुकाम पर है उसे देखते हुए वह एक बड़ी हद तक भारतीय संस्कृति की पहचान बन गई है। किसी भी अन्य देश की तुलना में भारत भाषाओं के मामले में कई जटिलताओं से भरा हुआ है। जिस देश में चार कोस पर भाषा बदल जाने की मिसाल दी जाती हो वहां ऐसी जटिलताएं स्वाभाविक ही हैं।

वर्तमान में देश में लगभग दो दर्जन आधिकारिक भाषाएं हैं और अनेक यह दर्जा पाने की होड़ में हैं। स्पष्ट है कि भारत को एक भाषा से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। संस्कृत को हर भारतीय भाषा की जननी माना जाता है और

दिलचस्प यह है कि केंद्रीय विद्यालयों में जिस जर्मन की जगह संस्कृत पढ़ाने के आदेश दिए गए हैं उसमें भी संस्कृत के अनेक शब्द हैं। पिछली दो-तीन शताब्दियों से देश के एक बड़े हिस्से में अंग्रेजी और हिंदी का ही बोलबाला है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजी का दायरा और अधिक बढ़ा और इस हद तक बढ़ा कि अंग्रेजी को पढ़े-लिखे तथा सभ्य होने की निशानी मान लिया गया। अंग्रेजी और कुलीनता को एक-दूसरे का पर्याय मान लिए जाने का परिणाम यह हुआ कि इस भाषा के प्रति देशवासियों का रुझान तेजी से बढ़ा। चूंकि अंग्रेजी की बढ़त पर अंकुश लगाने और हिंदी समेत दूसरी भारतीय भाषाओं को महत्व देने के प्रति गंभीरता से प्रयास नहीं किए गए इसलिए देश आज भारत और इंडिया के रूप में दो हिस्सों में बंटा नजर आ रहा है। केंद्रीय विद्यालय सीबीएसई यानी केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के तहत आते हैं, जो मुख्य रूप से एक अंग्रेजी प्रधान बोर्ड है। अंग्रेजी की प्रधानता के कारण ही इसकी छवि एक कुलीन बोर्ड की बन गई है। केंद्रीय विद्यालयों के छात्रों और अभिभावकों का एक बड़ा वर्ग यह मान रहा है कि जर्मन की जगह संस्कृत पढ़ने से उन्हें रोजगार की प्रतिस्पर्द्धा में कोई लाभ नहीं मिलेगा। इस दलील को एकदम नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि आज के युग में हर कोई अच्छी नौकरी अथवा व्यवसाय चाहता है और संस्कृत उन्हें शायद यह अवसर न प्रदान कर सके। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि संस्कृत आज बोलचाल की भाषा नहीं रह गई है और मुट्ठी भर लोग ही ऐसे होंगे जो इस भाषा के जरिये अपनी आजीविका कमाने में समर्थ होंगे।

संस्कृत तमाम संपन्नता के बावजूद अपनी प्रासंगिकता बचा नहीं सकी है। संस्कृत सिर्फ समाज से ही ओझल नहीं हुई, बल्कि स्कूली शिक्षा में भी जर्मन, फ्रेंच आदि विदेशी भाषाओं ने उसका स्थान ले लिया है। केंद्र सरकार की मानें तो उसने इसी

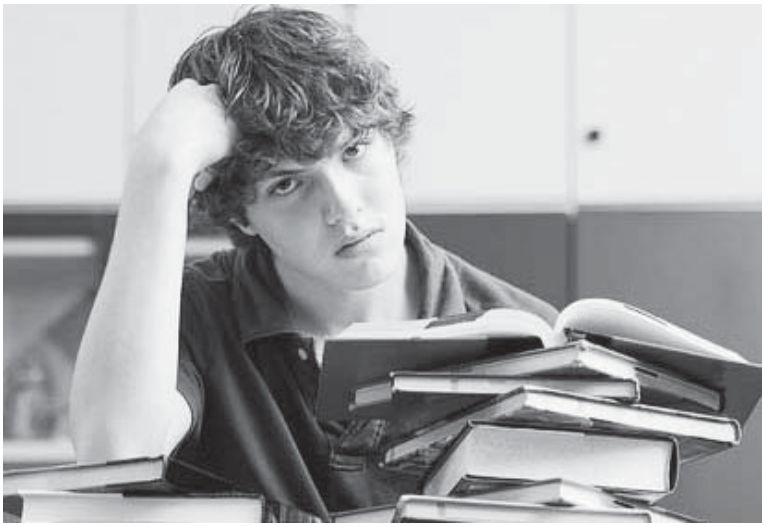

विसंगति को दूर किया है। सीबीएसई बोर्ड की एक बड़ी कमजोरी यह है कि उसमें हिंदी समेत अन्य भारतीय भाषाएं एक विषय के रूप में तो सम्मिलित हैं, लेकिन अध्ययन का माध्यम नहीं बनाई गई हैं। यह स्थिति तब है जब हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएं अंग्रेजी के मुकाबले बोलचाल में अधिक प्रचलन में हैं और विद्यार्थियों के लिए विषयवस्तु को समझने में अधिक मददगार हो सकती हैं। जब सरकारी स्तर पर हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को कामकाज का माध्यम नहीं बनाया जा पा रहा है तब फिर एक भाषा के रूप में संस्कृत की पढ़ाई के निर्णय का क्या औचित्य है? क्या इससे कोई लाभ मिलेगा? क्या संस्कृत को केवल इसलिए बढ़ावा दिया जा रहा है, क्योंकि यह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एजेंडे में है और भाजपा सरकार के ज्यादातर मंत्री संघ की पृष्ठभूमि वाले हैं? यदि केंद्र सरकार वास्तव में संस्कृत को बढ़ावा देना चाहती है तो उसे विद्यार्थियों पर इस भाषा का बोझ डालने के बजाय उन लोगों को छात्रवृत्ति जैसे तरीकों से प्रोत्साहित करना चाहिए जो संस्कृत में उच्च शिक्षा हासिल करना चाहते हैं। संस्कृत के पक्ष में इस दलील को खारिज नहीं किया जा सकता कि भारत और भारतीयता से इसका विशिष्ट नाता है।

यह सच है कि संस्कृत में हमारे देश की आत्मा बसती है, लेकिन हम आज के परिवेश और आवश्यकताओं की भी अनदेखी नहीं कर सकते। अपनी संस्कृति को समझने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उसे आम बोलचाल की भाषा में जाना-समझा जाए। दो-तीन वर्ष संस्कृत की पढ़ाई से उन्हें अपनी संस्कृति के बारे में शायद ही कोई ठोस ज्ञान हो सके। वेद-उपनिषद के ज्ञान तक पहुंचने के लिए उन्हें संस्कृत का गहन अध्ययन करना होगा और आज के जमाने में यह संभव नहीं कि विद्यार्थी केवल वेद-उपनिषद और अन्य प्राचीन ग्रंथ पढ़ने के लिए संस्कृत का इतना गहन अध्ययन करें। इसके लिए उन्हें स्कूल-कॉलेज से निकलकर विश्वविद्यालयों में भी संस्कृत विषय का अध्ययन करना होगा। हमारे नीति-नियंताओं को इस पर ध्यान देना चाहिए कि देश में अपनी संस्कृति का गहन अध्ययन करने और उसके प्रचार-प्रसार में योगदान देने वाले लोगों की कमी क्यों होती जा रही है? यह प्रत्येक सरकार की जिम्मेदारी है कि वह देश की सांस्कृतिक धरोहर बचाने के लिए लोगों को महाविद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों में सांस्कृतिक विषयों के गहन अध्ययन और शोध के लिए प्रेरित करे। संस्कृत इस अध्ययन का एक महत्वपूर्ण पहलू होना चाहिए। ❑

(दैनिक जागरण के सम्पादक हैं)

भाषा के नाम पर खिलवाड़ क्यों?

❑ पूरन चंद सरीन

अंग्रेज समझ चुके थे कि अगर उन्हें भारत पर राज करना है तो उनका काम मुट्ठी भर अंग्रेजों से नहीं चल सकता, इसके लिए उन्हें भारतीयों को अंग्रेज बनाना होगा और इसके लिए उन्होंने केवल इतना किया कि हमें अंग्रेजी सिखानी शुरु कर दी और वह भी सिर्फ इतनी कि हम केवल बाबूगिरी कर सकें और अंग्रेजों का काम चलता रहे। मतलब यह कि अंग्रेजी को रोजगार से जोड़ दिया। अगर और स्पष्टता से कहें तो जिस तरह बिल्ली शेर को सब दाव सिखा देती है लेकिन पेड़ पर चढना नहीं ताकि अगर शेर आक्रामक हो जाए तो वह अपना बचाव कर सके, उसी तरह अंग्रेजों ने भी हमें केवल उतनी ही अंग्रेजी सीखने दी जिससे हम केवल उनके दफ्तर में बाबू ही बन सकें।

पिछले दिनों केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्रीमती स्मृति इरानी अपने बयान और निर्णय को लेकर चर्चा में रहीं। उनकी सोच भी दुर्भाग्य से वही थी जो अब तक हमारे कर्णधार रहे कांग्रेसी नेताओं की थी। इस बात पर बहस न करते हुए हकीकत को समझना ठीक होगा।

हकीकत यह है कि आजादी के बाद 65 वर्ष के आसपास की पीढ़ी जो अब ज्यादातर नौकरी और काम-धंधे से रिटायर्ड हो चुकी है, जब सोचती है कि उसे अपने जीवन में क्या मिला, उसने क्या संजोया और क्या खोया तो उसके सामने शून्य की सी स्थिति नजर आती है। यहां हम कुछ मुट्ठी भर अमीरों की बात नहीं कर रहे हैं बल्कि कोठरी भर आम आदमी की कर रहे हैं जो इस उम्र में भी पेट भरने के लिए कोई नई नौकरी या रोजगार करने के लिए मजबूर हैं। जरा गौर कीजिए, बुजुर्ग हो चुकी पीढ़ी की असहाय अवस्था के लिए जिम्मेदार क्या हमारी शिक्षा नीति नहीं है और उससे भी ज्यादा हमारी भाषा नीति नहीं है? अब जरा अंग्रेजों की कारस्तानी पर गौर करें।

अंग्रेज और बाबूगिरी : अंग्रेज समझ चुके थे कि अगर उन्हें भारत पर राज करना है तो उनका काम मुट्ठी भर अंग्रेजों से नहीं चल सकता, इसके लिए उन्हें भारतीयों को अंग्रेज बनाना होगा और इसके लिए उन्होंने केवल इतना किया कि हमें अंग्रेजी सिखानी शुरु कर दी और वह भी सिर्फ इतनी कि हम केवल बाबूगिरी कर सकें और अंग्रेजों का काम चलता रहे। मतलब यह कि अंग्रेजी को रोजगार से जोड़ दिया। अगर और स्पष्टता से कहें तो जिस तरह बिल्ली शेर को सब दाव सिखा देती है लेकिन पेड़ पर चढना नहीं ताकि अगर शेर आक्रामक हो जाए तो वह अपना बचाव कर सके, उसी तरह अंग्रेजों ने भी हमें केवल उतनी ही अंग्रेजी सीखने दी जिससे हम केवल उनके दफ्तर में बाबू ही बन सकें। अब हम बात करें बापू गांधी की। बापू अंग्रेजों की हर चाल समझते थे। वह समझ गए थे कि अंग्रेज यहां से जाने के बाद भी अंग्रेजी बोलने वाले देसी अंग्रेज छोड़ जाएंगे जो आजादी के बाद भी उनके गुलाम रहेंगे।

बापू और हिन्दी : बापू ने सौ साल पहले यह बात समझ ली थी और इसीलिए उन्होंने 29 मार्च, 1918 को एक सम्मेलन में हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने की घोषणा कर दी थी। वह यह जानते थे कि भारत में अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी को

स्वीकार नहीं किया जाएगा, इसके लिए उन्होंने अपने 5 दूत नियुक्त किए जिनमें उनके पुत्र देवदास गांधी भी थे और कहा कि वे इन प्रदेशों में जाकर हिन्दी सिखाने और उसे वहां जनमानस की भाषा बनाने का महत्वपूर्ण कार्य करें।

उन्होंने एक काम और किया, उन्होंने जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का संकल्प लिया तो ठेठ काठियावाड़ी वेश में उसी तरह हिन्दी की वकालत की जिस तरह सूटबूट पहनकर अंग्रेज अंग्रेजी की वकालत करते थे। बापू ने एक और बात कही थी और वह यह कि अगर आजाद भारत में हिन्दी और प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं को महत्व नहीं मिला तो स्वराज्य की बात करना निरर्थक है। अब आजादी के बाद हमने क्या किया? बापू तो 1948 में रहे नहीं और हमें प्रधानमंत्री के रूप में शुद्ध देसी अंग्रेज पंडित जवाहर लाल नेहरू मिल गए जिन्होंने अंग्रेजों की कुटिल शिक्षा नीति का अनुसरण करते हुए अंग्रेजी को पूरे देश पर इस तरह थोप दिया कि हम अंग्रेजी की केंचुली को कभी उतार ही न सकें।

हिन्दी और शिक्षा के माध्यम को लेकर कुछ लोगों ने मुंह खोला तो मुलम्मे के तौर पर सन् 1949 में एक शिक्षा समिति बना दी। अंग्रेजी के खिलाफ कुछ माहौल बना तो सन् 1961 में राज्यों के शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में त्रिभाषा फार्मूले का शगूफा छोड़ दिया। 1968 में यह सिफारिश भी कर दी गई कि अंग्रेजी, हिन्दी और क्षेत्रीय भाषा में ही शिक्षा दी जाए।

राज्यों में अपनी भाषा ही ठीक से सिखाने का इंतजाम नहीं था तो हिन्दी भाषी राज्यों में दूसरी भाषाओं के सिखाने की बात सोचना भी मूर्खता थी। इसी तरह जब हिन्दी भाषी राज्यों में भी हिन्दी की कोई इज्जत नहीं थी तो अहिंदी भाषी राज्यों में इसे कोई क्यों अपनाता? नतीजे के तौर पर अंग्रेजी ही सबसे ऊपर रही और अंग्रेजी सीखकर हमारी एक पूरी पीढ़ी बाबू बनकर ही जीने के लिए अभिशप्त हो गई।

अब जो मेधावी थे, वे ब्रेन ड्रेन को मजबूत करते हुए दूसरे देशों में चले गए और आज अमरीका, यूरोप को अपने ज्ञान का लाभ पहुंचा रहे हैं और हम भारतीयों के हाथ में रह गया अपनी भाषाओं का झुनझुना जिसे बजाकर हम भारतीय भाषाओं के विकास की बात करते रहते हैं और सभा सम्मेलनों के नाम पर देश-विदेश की यात्राओं का जुगाड़ करने में लगे रहते हैं।

असली मुद्दा क्या है

चलिए भूमिका तो बहुत हो गई, अब असली मुद्दे की बात करते हैं। यहां फिर बापू गांधी की ही बात बताते हैं। उन्होंने समझ लिया था कि जिस तरह अंग्रेजों ने अंग्रेजी को रोजगार से जोड़ दिया था उसी तरह हमें हिन्दी को रोजगार से जोड़ना होगा। मतलब यह कि रोजगार की भाषा के रूप में हिन्दी का विकास करना होगा।

जब त्रिभाषा फार्मूला बना तो अहिन्दी भाषी क्षेत्रों को लगा कि हिन्दी सीखकर उनके लिए हिन्दी भाषी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर मिलेंगे और उन्होंने जबरदस्त कामयाबी के साथ हिन्दी सीखी। तमिलनाडु इसमें सबसे आगे था, केरल, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक ने भी बाजी मारी और इसी तरह बंगाल, आसाम, ओडीशा में भी हिन्दी सीखने की जबरदस्त होड़ लगी। मराठी और गुजराती तो पहले ही हिन्दी के साथ थीं। अब यहां हमारी कांग्रेसी सरकारों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा की बजाय अनुवाद की भाषा बना दिया। अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने वाले स्कूल खुल गए जहां हिन्दी में बात करना वर्जित ही नहीं बल्कि हिन्दी बोलने पर दंडित भी किया जाने लगा। पराकाष्ठा तो तब हो गई जब पंडित नेहरू ने आजाद भारत में ब्रिटिश घरानों से आए मेहमानों से यह कहा कि देखिए, अब हम कितनी बढ़िया अंग्रेजी बोलने लगे हैं। सरकारी कामकाज की भाषा यही थी।

अहिंदी भाषी क्षेत्रों के लोग जब हिन्दी भाषी क्षेत्रों में नौकरी या रोजगार के लिए आए तो यहां अंग्रेजी का बोलबाला देखकर निराश हो गए क्योंकि उनका अमूल्य समय हिन्दी सीखने में बर्बाद हो गया था और इस तरह सभी अहिंदी भाषी प्रदेशों में हिन्दी का विरोध शुरु हो गया जो आज तक कायम है।

अमिताभ बच्चन का बाप

27 नवम्बर को प्रातः स्मरणीय डा. हरिवंश राय बच्चन का जन्मदिन था। एक घटना याद आ गई तो सोचा पाठकों के साथ बांट लूं।

बात लगभग 25 वर्ष पहले की है। बच्चन जी से मिलने दिल्ली में गुलमोहर पार्क स्थित उनके घर 'सोपान' में अक्सर जाया करता था। मैं तब ग्रीनपार्क में रहता था तो शाम को अक्सर समय लेकर पहुंच जाता।

एक दिन पहुंचा तो बैठने से पहले ही बच्चन जी ने पूछा, 'पूरन, तुम किससे मिलने आते हो?' 'मैं कुछ समझा नहीं' मैंने कहा। उन्होंने कहा, 'आजकल लोग मेरे पास अमिताभ के लिए मिलने आते हैं, इस पर मैंने कहा बाबू जी मैं तो अमिताभ के बाप से मिलने आता हूँ।' इस पर उनकी उन्मुक्त हँसी जो कमरे में फैली तो उसकी सुगंध आज भी महसूस होती है। उसके बाद उन्होंने जो नाश्ता कराया वह बाकी दिनों से बहुत अलग और स्वादिष्ट था। हम दोनों ही गुरु-शिष्य की भांति नमकीन और मीठे व्यंजनों का आनंद लेते रहे। बच्चन जी को कड़े स्वभाव और अनुशासनप्रिय शिक्षक के रूप में जाना जाता था। कवि रूप में उनका सहज स्वरूप देखने को मिलता था। एक बार आत्मीय बना लिया तो फिर जीवन भर आत्मीय ही बना कर रखते थे। नए साल की शुभकामनाएं हों या किसी अवसर पर बधाई संदेश, पत्र लिखना उनकी आदत थी। मधुशाला सुनकर बड़ी हुई हमारी पीढ़ी उनके साहित्य से समृद्ध होती रही। आज वे हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनकी चिरपरिचित भाव-भंगिमा हमेशा अंकित रहेगी। ❑

(स्वतंत्र लेखक-टिप्पणीकार)

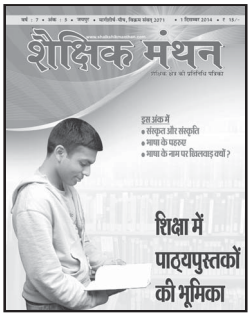

क्या अपनी भाषाओं के प्रति हमारे गहरे भावात्मक लगाव में कमी का कारण केवल वह दासता है, जिससे हम 1947 में मुक्त हो गए थे? हम प्राय: इस बात को क्यों नहीं अनुभव कर पाते कि क्षुद्र अहम को मिथ्या तुष्टि देने वाला हमारा अंगरेजी-प्रेम अनेक अंतरराष्ट्रीय स्थितियों में भारत के अपमान का कारण बनता है? भारतीय दूतावासों में हिंदी में बात करने का प्रयास करने वाले अनेक विदेशी विद्यार्थियों को भारतीय अधिकारियों-कर्मचारियों से हिंदी में पूछे गए प्रश्न का उत्तर अंगरेजी में मिलता है, तो उन्हें सांस्कृतिक झटका लगना स्वाभाविक है। पर हमें अपने अवांछित भाषाई व्यवहार से कोई झटका क्यों नहीं लगता?

भाषा के पहरुए

❑ हरजेंद्र चौधरी

मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने केंद्रीय विद्यालयों में तृतीय भाषा के रूप में जर्मन की जगह संस्कृत पढ़ाने का निर्णय किया तो प्रतिक्रियाओं का सिलसिला शुरू हो गया। जर्मनी की सरकार ने जर्मन भाषा की पढ़ाई जारी रखवाने के लिए तुरंत हर स्तर पर प्रयास शुरू कर दिया। जर्मन भाषा की पढ़ाई चलती रहे, यह आग्रह केवल राजनयिक स्तर पर जर्मन राजदूत माइकेल स्टेनर द्वारा नहीं, अंतरराष्ट्रीय और द्विपक्षीय संबंध-व्यवस्था के उच्चतम स्तर पर भी बिना किसी देर या प्रतीक्षा के दोहराया गया। आस्ट्रेलिया में आयोजित जी-20 सम्मेलन के दौरान जर्मन चांसलर एंजेला मर्केल ने भारत के प्रधानमंत्री से मुलाकात के दौरान जिन मुद्दों पर बात की, उनमें एक मुद्दा यह भी था। उन्होंने इस मामले में चिंता जाहिर करते हुए प्रधानमंत्री मोदी से इस पर विचार करने का आग्रह किया।

इस घटनाक्रम से प्रश्न उठता है कि किसी विदेशी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भारतीय भाषा की पढ़ाई बंद होने या पाठ्यक्रम का दर्जा घटाए जाने की स्थिति में क्या भारत की ओर से ऐसी ही त्वरित प्रतिक्रिया होती? क्या हम भी उनकी पढ़ाई जारी रखवाने के लिए इसी तरह राजनयिक और द्विपक्षीय प्रयास करते।

सब जानते हैं कि किसी देश-क्षेत्र-समाज की मूल आत्मा को समझने के लिए उसकी भाषा सर्वाधिक उपयुक्त और कारगर माध्यम है। किन्हीं दो देशों के बीच सांस्कृतिक ही नहीं, राजनयिक, राजनीतिक, आर्थिक-व्यापारिक संबंधों को निर्धारित-परिचालित करने में भाषाओं की भूमिका को जानने-मानने वाले देश ही इस तरह की रुचि रख सकते हैं। भारत के शिक्षा-संस्थानों में अनेक विदेशी भाषाओं की पढ़ाई होती है। अनेक देशों के साथ हमारे सांस्कृतिक विनिमय संबंधी समझौते हैं, जिनके अंतर्गत वहां के 'नेटिव स्पीकर' प्राध्यापक हमारे यहां उच्च शिक्षा-संस्थानों में पढ़ाने आते हैं और हमारी भाषाओं के शिक्षक वहां भेजे जाते हैं।

दूसरी ओर अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों और संस्थानों में संस्कृत, हिंदी और कुछ अन्य भारतीय भाषाएं पढ़ाई जाती हैं। भारत सरकार विभिन्न सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रमों के तहत

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद (विदेश मंत्रालय) के माध्यम से अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में भारतीय प्राध्यापकों को प्रतिनियुक्ति पर भेजती है। अनेक अन्य ऐसे देश और विश्वविद्यालय भी हैं, जो अपने प्रयासों और खर्चों से भारतीय भाषाओं के 'नेटिव' प्राध्यापकों को नियुक्त करते हैं। जहां यह दूसरे प्रकार की व्यवस्था है, वहां जब हमारी भाषाओं के पाठ्यक्रम-कार्यक्रम में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या में अवांछित कमी आ जाती है, तो जाहिर है कि भारतीय भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था चरमरा जाती है। ऐसे में भारत की ओर से राजनयिक-राजनीतिक स्तर पर प्राय: कोई ऐसी त्वरित और सहज प्रतिक्रिया देखने-सुनने में नहीं आती, जैसी जर्मन भाषा शिक्षण के संबंध में जर्मन सरकार की ओर से आई है।

क्या अपनी भाषाओं के प्रति हमारे गहरे भावात्मक लगाव में कमी का कारण केवल वह दासता है, जिससे हम 1947 में मुक्त हो गए थे? हम प्राय: इस बात को क्यों नहीं अनुभव कर पाते कि क्षुद्र अहम को मिथ्या तुष्टि देने वाला हमारा अंगरेजी-प्रेम अनेक अंतरराष्ट्रीय स्थितियों में भारत के अपमान का कारण बनता है? भारतीय दूतावासों में हिंदी में बात करने का प्रयास करने वाले अनेक विदेशी विद्यार्थियों को भारतीय अधिकारियों-कर्मचारियों से हिंदी में पूछे गए प्रश्न का उत्तर अंगरेजी में मिलता है, तो उन्हें सांस्कृतिक झटका लगना स्वाभाविक है। पर हमें अपने अवांछित भाषाई व्यवहार से कोई झटका क्यों नहीं लगता?

इसी भाषाई व्यवहार का दूसरा पहलू यह है कि किसी विदेशी विश्वविद्यालय या संस्थान द्वारा भारतीय भाषाओं की पढ़ाई का दर्जा घटाने या उसे बंद कर देने के फलस्वरूप भारत की ओर से प्राय: न तो किसी तरह के प्रतिरोध का स्वर सुनाई पड़ता है, न किसी फौरी मदद या विकल्प का आश्वासन दिया जाता है। आश्चर्य और खेद की बात है कि अपने आप को 'भारतीय संस्कृति के प्रेमी' मानने वाले अधिकतर प्रवासी भारतीय ऐसी स्थितियों से अनजान बने रहते हैं। एकाध अपवाद को छोड़ दें तो हम पाएंगे कि विदेशों में संपन्न जीवन बिताने वाला अंगरेजीदां 'भारतीय डायस्पोरा' ऐसे मामले में ढुलमुल रवैया अपनाता है। हाल के दशकों में विश्व के कुछ जाने-माने विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई बंद होने या उसके पाठ्यक्रम का दर्जा घटाने संबंधी घटनाक्रम पर गौर करें तो यही तस्वीर उभरती है।

भारत के केंद्रीय विद्यालयों में तृतीय भाषा के रूप में जर्मन की पढ़ाई के लिए 2011 में हुए एक समझौते के अंतर्गत अपनी विश्व प्रसिद्ध 'गोएथ संस्था' के माध्यम से सात सौ अध्यापकों की व्यवस्था करके जर्मन सरकार ने अपने भाषा प्रेम और रुचि का परिचय दिया। जर्मन भाषा-शिक्षण की उत्कृष्ट व्यवस्था की दावेदार, वैश्विक उपस्थिति वाली इस संस्था के कार्यालय नई दिल्ली समेत भारत के कुल सात शहरों में मौजूद हैं। संस्कृत के अध्यापकों ने इस समझौते के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय में गुहार लगाई थी कि केंद्रीय विद्यालय बोर्ड द्वारा गोएथ संस्था के साथ किया गया समझौता राष्ट्रीय शिक्षा-नीति का उल्लंघन है। अब मानव संसाधन मंत्रालय की घोषणा के अनुसार यह समझौता राष्ट्रीय शिक्षा-नीति और राष्ट्रीय शिक्षा कार्ययोजना के अनुरूप नहीं है।

केंद्रीय विद्यालय बोर्ड से कहा गया है कि आगे इसका नवीनीकरण न किया जाए। इस निर्णय के फलस्वरूप भविष्य में केंद्रीय विद्यालयों में जर्मन की पढ़ाई अन्य भाषा के रूप में तो जारी रहेगी, लेकिन तृतीय भाषा के रूप में नहीं। यानी इस निर्णय ने जर्मन-शिक्षण को प्राप्त विशेष दर्जे को समाप्त कर दिया है। जर्मनी भारत के स्कूलों में तृतीय भाषा के रूप में जर्मन की पढ़ाई जारी रखवाने के लिए वैधानिक तौर पर भारत पर दबाव नहीं बना सकता, पर उसकी ओर से किए जा रहे आग्रहपूर्ण प्रयास उसके भाषा-प्रेम के उज्ज्वल दृष्टांत हैं। विदेशों में भारतीय भाषाओं के शिक्षण में आने वाली रुकावटों के निराकरण के लिए वहां के भारतवंशियों और सरकार की ओर से भी ऐसे ही दृष्टांत पेश किए जाने की जरूरत है। इससे दुनिया में न केवल हमारी भाषाई-सांस्कृतिक पहचान को बल मिलेगा, बल्कि उभरती विश्व-शक्ति के रूप में भारत की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। ❑

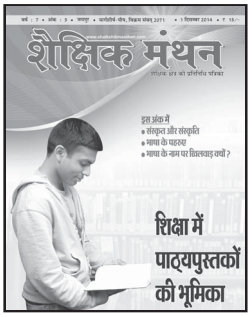

बाजार में बचपन

❑ शुभू पटवा

बच्चों के लिए सोचना और काम करना जितना जरूरी है, उतना ही जटिल भी। लेकिन हमारे समाज की मनीषा ने मालूम नहीं क्यों, बच्चों के लिए गंभीरता से नहीं सोचा। बाल-मन पर समग्र रूप से चिंतन-मनन और क्रियाशील रहने वालों में गिजुभाई (गिरिजाशंकर बधेका) प्रमुख हैं। उन्होंने बच्चों के शिक्षण और उनके साथ होने वाले बर्ताव पर न केवल लिखा है, बल्कि प्रयोग करके सिद्ध करने की कोशिश की है कि बच्चों के साथ बड़ों का कैसा व्यवहार होना चाहिए। जवाहरलाल नेहरू और पूर्व राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम का बच्चों के प्रति लगाव जगजाहिर है। लेकिन सच यह है कि हमारे यहां बचपन अब तक उपेक्षित ही रहा है।

2011 की जनगणना के आधार पर छह वर्ष तक के बच्चों की आबादी पंद्रह करोड़ सत्तासी लाख नवासी हजार दो सौ सत्तासी मानी गई थी। यह संख्या कुल आबादी का 13.16 प्रतिशत है। ग्रामीण समुदाय और सर्वथा असहाय वर्ग को एक बार छोड़ दें और नगरीय, उच्च, मध्यम और उच्च अल्प आय वर्ग को ही देखें तो हमें लगेगा कि इस वर्ग के बच्चों पर जो प्रभाव अभी से पड़ने लगे हैं, वे उनके मानस पर क्या असर छोड़ रहे हैं और उनके भविष्य की दशा किस तरह की होने वाली है! इसके लिए शिक्षा प्रबंधन के साथ-साथ बच्चों के अभिभावकगण भी उत्तरदायी हैं। हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियां और हमारा ढांचागत विकास भी इसके लिए जिम्मेदार है।

इन हालात के लिए हमें आज की लुभावनी तकनीक और बाजार पर गौर करना चाहिए। खिलौनों की दुकानें आजकल किस तरह के खिलौनों से अटी पड़ी हैं? कोई बच्चा जब उन्हें देख कर लेने को मचलता है, तब विचारवान माता-पिता का विवेक भी धरा रह जाता है। आर्थिक तौर पर थोड़े से ठीक-ठाक परिवार तो महंगे खिलौने खरीदने में जरा भी नहीं झिझकते। अनेक घर ऐसे खिलौनों से भरे मिल सकते हैं जो बच्चों के मन-बहलाव के साथ उनमें हिंसा, विभेद और वैमनस्य के बीज भी बोते हैं। उनके प्रति माता-पिता या अभिभावक, कोई भी सजग नहीं हैं। शिक्षा और बाल मनोविज्ञान को जानने-समझने वाले कुछ विचारशील लोग इन स्थितियों के प्रति सचेत करते हैं। लेकिन नीति-निर्धारकों का ध्यान उन बातों को ओर नहीं जाता। यही वजह है कि खिलौनों के बाजार बेधड़क नित-नए साजो-सामान के साथ सजते रहते हैं। बाजार इस तरह के खिलौनों से अटे पड़े ही हैं, खाने-पीने की वैसी सामग्रियों की भी वहां भरमार है जो बच्चों के लिए हानिकारक हो सकती हैं।

इसके अलावा, बच्चे अब घर से बाहर हमउम्र बच्चों के साथ खेल के मैदान या समूह में खेलने में रुचि नहीं रख रहे। कभी एक किशोर या

अध्ययन बताते हैं कि ऐसे किशोर-किशोरियां भिन्न-भिन्न बीमारियों और हिंसक मनोदशाओं से ग्रस्त हो जाते हैं। यही नहीं, वीडियो गेम की दुकानें अब जूआघर बन रही हैं। जो माता-पिता अपनी स्वतंत्रता के लिए बच्चों के प्रति इस तरह बेफिक्र हो जाते हैं, उन्हें यह सोचना जरूरी है कि आखिरकार अपने दायित्वों से भागने के साथ वे समाज का भी कितना बड़ा अहित कर रहे हैं। जिस सामाजिकता की उम्मीद बचपन में ही की जाती रही है, ऐसे हालात में वह नष्ट हो रही है और एक तरह की घृणा और गैर-बराबरी बढ़ रही है।

बच्चा स्कूल से घर आने के बाद जब फिर घर से बाहर निकलता था तो उसके लिए सबसे ज्यादा आकर्षण वे खेल और संगी-साथी होते थे, जिन पर न कुछ खर्च करने की जरूरत होती और न किसी औपचारिक प्रबंधन की। तब सब कुछ सहज होता था और यहीं उनमें समूह और सामाजिकता का बीज पड़ जाता था। आज माहौल के बदलाव ने बच्चों को एकाकी बना डाला है और बचपन खो गया है।

सवाल है कि क्या इसके लिए माता.पिता उत्तरदायी नहीं हैं? बच्चों के लिए 'वीडियो गेम्स' जुटा कर माता-पिता मानने लगे हैं कि वे एक बड़ी जहमत से मुक्त हो गए हैं। बच्चे उनमें इतने डूब जाते हैं कि शेष दुनिया का कोई मानी उनके लिए बचता ही नहीं। थोड़े संपन्न परिवारों और महंगे निजी स्कूलों में बच्चों को कंप्यूटर शिक्षण के दूसरे लाभ मिलें या नहीं, कंप्यूटर के खेलों में वे दक्ष हो जाते हैं। जो माता-पिता अपने कामकाज में लगातार व्यस्त रहते हैं, वे नहीं देख पाते कि उनका बच्चा कैसे समय गुजार रहा है।

कई अध्ययन बताते हैं कि ऐसे किशोर-किशोरियां भिन्न-भिन्न बीमारियों और हिंसक मनोदशाओं से ग्रस्त हो जाते हैं। यही नहीं, वीडियो गेम की दुकानें अब जूआघर बन रही हैं। जो माता-पिता अपनी स्वतंत्रता के लिए बच्चों के प्रति इस तरह बेफिक्र हो जाते हैं, उन्हें यह सोचना जरूरी है कि आखिरकार अपने दायित्वों से भागने के साथ वे समाज का भी कितना बड़ा अहित कर रहे हैं। जिस सामाजिकता की उम्मीद बचपन में ही की जाती रही है, ऐसे हालात में वह नष्ट हो रही है और एक तरह की घृणा और गैर-बराबरी बढ़ रही है।

हमें मानना होगा कि 'बचपन की सामाजिकता' की बात केवल बच्चों तक सीमित न रह कर इसका व्यापक असर और दायरा दिखाई देना चाहिए। इसलिए जरूरी है कि समाज के विचारशील लोग उन सब बातों पर गहन चिंतन करें जो हमारे भविष्य का आधार कही मानी जाती हैं। इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में बाल-शिक्षाविदों से लेकर समाजकर्मियों को भी इन पक्षों पर विचार करना चाहिए। ❑

दिल्ली अध्यापक परिषद का प्रांतीय अधिवेशन सम्पन्न

दिल्ली अध्यापक परिषद ने केदारनाथ साहनी सभागार, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी सिविक सेंटर, नई दिल्ली में एक दिवसीय प्रांतीय अधिवेशन का 23 नवम्बर 2014 को आयोजन किया। इस सम्मलेन में दिल्ली से सांसद श्री प्रवेश वर्मा, विधायक श्री साहब सिंह चौहान, विधायक श्री राम किशन सिंघल, उत्तरी दिल्ली नगर निगम के अध्यक्ष श्री मोहन प्रसाद भारद्वाज, और पार्षद श्री चांदी राम चावला विशिष्ठ अतिथि के रूप में उपस्थित थे। मुख्य वक्ता के रूप में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के संगठन मंत्री माननीय महेंद्र कपूर उपस्थित थे।

दिल्ली के लगभग एक हजार शिक्षक-शिक्षिका इसमें शामिल हुए। इस कार्यक्रम में मुख्य वक्ता माननीय महेंद्र कपूर ने शिक्षकों से आह्वान किया की समाज के निर्माण में वे अपनी भागीदारी दें और शिक्षक स्वयं को एक आदर्श के रूप में स्थापित करें। उन्होंने जीवन मूल्यों को स्थापित करने पर जोर दिया।

सांसद श्री प्रवेश वर्मा ने शिक्षकों को सम्बोधित करते हुए कहा कि चूँकि दिल्ली में कोई सरकार नहीं है, ऐसी स्थिति में, मैं दिल्ली के शिक्षकों की समस्याओं को संसद में उठा सकता हुँ, इस पर उन्होंने सुझाव भी मांगे। उन्होंने कहा कि हमारे प्रधानमन्त्री शिक्षा के प्रति बहुत ललक रखते हैं और वे शिक्षा में व्यापक सुधार के प्रयास कर रहे हैं।

दिल्ली भाजपा के वरिष्ठ नेता व पांच बार विधायक रहे श्री साहब सिंह चौहान ने बताया कि वे स्वयं एक शिक्षक रहे हैं और शिक्षकों की विभिन्न मांगों को समय समय पर उठाते रहे हैं। उन्होंने कहा कि वेतन विसंगति के मुद्दे को उन्होंने दिल्ली अध्यापक परिषद के कहने पर दिल्ली विधान सभा में उठाया था। साथ ही उन्होंने कहा कि दिल्ली अध्यापक परिषद के साथ उन्होंने मुख्य सचिव श्री डी. एम. सपोलिया के साथ बैठक कर के शिक्षा व शिक्षकों के विभिन्न मुद्दे उठाये हैं, जिसके बहुत जल्दी अच्छे परिणाम आने वाले हैं। उन्होंने शिक्षकों से वादा किया की यदि भविष्य में उनकी सरकार आती है तो, जितने भी मुद्दे उठाये गए हैं, उनको तत्काल हल करवाया जाएगा।

दिल्ली अध्यापक परिषद के अध्यक्ष जय भगवान गोयल ने शिक्षकों की समस्याओं, छठे वेतन आयोग के अनुसार वेतन विसंगति, कक्षाओं में 1:30 का अनुपात के अनुसार अध्यापकों की नियमित भर्ती, कैश लेस मेडिकल सुविधा, सीएल तथा सीसीएल को पूर्व की तरह बहाल करना जैसे अनेक मुद्दे उठाये और इनको हल करने के लिए किये जा रहे प्रयासों के बारे में बताया।

इस अवसर पर उत्तरी दिल्ली नगर निगम के अध्यक्ष श्री मोहन प्रसाद भारद्वाज ने सभागार में आये सभी शिक्षकों का एक मेजबान की तरह अभिनन्दन किया और बताया कि इस सिविक सेंटर में शिक्षकों का यह पहला कार्यक्रम हो रहा है और इसमें दिल्ली नगर निगम की तरफ से पूरा सहयोग किया गया है। उन्होंने सबका आभार व्यक्त किया और यह भी बताया कि मैं भी एक शिक्षक रहा हूँ।

मंच संचालन प्रदेश महामंत्री रतन लाल शर्मा ने किया। इस अवसर पर क्षेत्र प्रमुख जगदीश कौशिक, प्रदेश संगठन मंत्री राजेंद्र गोयल, प्रा. संवर्ग की राष्ट्रीय संयुक्त मंत्री डॉ. सुदेश शर्मा आदि प्रमुख कार्यकर्ता उपस्थित थे।

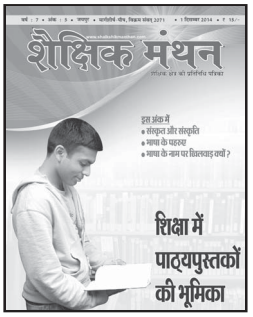

बचपन लीलती पाठशालाएं

❑ चंद्रदेव भारद्वाज

एक बारह वर्षीय छात्र ने आत्महत्या कर ली। यह कितना दुखद और मार्मिक है। मानवीय मूल्यों को झकझोर देने वाला है। शिक्षा और शिक्षकों के प्रति घृणा पैदा करने वाला यह कृत्य हमें विचलित करता है। आए दिन स्कूलों में जाने वाले बच्चों की प्रताड़ना के समाचार हम मीडिया में पढ़ते-सुनते हैं। प्रताड़ना इतनी बर्बर और कठोर होती है कि उससे निजात पाने को बच्चा कहीं दूर चले जाना, भाग जाना, छिप जाना या फिर कहीं खो जाना चाहता है। और अंततः बच्चे की इस सोच का परिणाम आत्महत्या ही होता है। ऐसी ही निर्मम पिटाई का दंश एक अबोध बच्चे की जान ले बैठा। पिटाई से भयभीत जिस बारह वर्षीय 7वीं कक्षा के छात्र ने आत्महत्या की, वह आत्महत्या से पहले दिनभर स्कूल न जा कर खेत में छिपा रहा। बच्चा जानता था कि स्कूल न जाने या छिपने से काम नहीं चलेगा। नहीं जाएगा तो उसके माता-पिता स्कूल भेजेंगे। हर स्थिति में स्कूल तो जाना ही पड़ेगा। वह दुनिया से ही चला गया।

घटना के बाद उसके पिता ने भी यही कहा-यदि पता होता कि बेटा ऐसा कदम उठा लेगा तो स्कूल छुड़वा देता। दूसरे स्कूल में पढ़ लेता। कोई माता-पिता नहीं चाहता कि स्कूल में ऐसा अवांछनीय कृत्य हो। कोई नहीं चाहता कि प्रताड़ना की परिणति आत्महत्या हो या शिक्षा से ही बच्चा विमुख हो जाए। माता-पिता नहीं चाहते कि उनके बच्चों के साथ ऐसा हो, पर सवाल यह है कि क्या हम इस भावना को समझते हैं? क्या हमारा यह भाव हमारी बढ़ती महत्वाकांक्षा में दब नहीं जाता है? क्या हम बच्चे के बेहतर भविष्य की कोशिश में अपनी इस भावना को कभी बाहर आने देते हैं? क्या हम उन बच्चों के साथ न्याय करते हैं, जो स्कूल नहीं जाना चाहते, पढ़ाई से कतराते या जी चुराते हों। उनसे उनका मन जानने की कोशिश करते हैं? क्या हम उनसे स्कूल नहीं जाने की इच्छा का कारण पूछते हैं? क्या हम क्लास टीचर या अन्य टीचर के बारे में जानने की चेष्टा करते हैं, जिसका बच्चा बार-बार नाम लेता या नाम नहीं लेता है। बच्चा प्रताड़ित करने वाले टीचर या मैडम से डरता है। वह घर में भी आतंकित रहता है। उसे आपके प्यार की जरूरत होती है। अबोध अवस्था के कारण नहीं जान पाता कि वह जो कुछ भी अपने सर या मैडम के बारे में बताएगा, उसे सर या मैडम नहीं जान पाएंगे। डर के कारण वह कुछ भी बताने से

क्या हम उन बच्चों के साथ न्याय करते हैं, जो स्कूल नहीं जाना चाहते, पढ़ाई से कतराते या जी चुराते हों। उनसे उनका मन जानने की कोशिश करते हैं? क्या हम उनसे स्कूल नहीं जाने की इच्छा का कारण पूछते हैं? क्या हम क्लास टीचर या अन्य टीचर के बारे में जानने की चेष्टा करते हैं, जिसका बच्चा बार-बार नाम लेता या नाम नहीं लेता है। बच्चा प्रताड़ित करने वाले टीचर या मैडम से डरता है। वह घर में भी आतंकित रहता है। उसे आपके प्यार की जरूरत होती है। अबोध अवस्था के कारण नहीं जान पाता कि वह जो कुछ भी अपने सर या मैडम के बारे में बताएगा, उसे सर या मैडम नहीं जान पाएंगे। डर के कारण वह कुछ भी बताने से इनकार कर देता है। कभी-कभी बच्चा अपने स्कूल से दूसरे स्कूल को अच्छा बताता है। बच्चे से उस कथित अच्छेपन को जानने की जरूरत महसूस कीजिए।

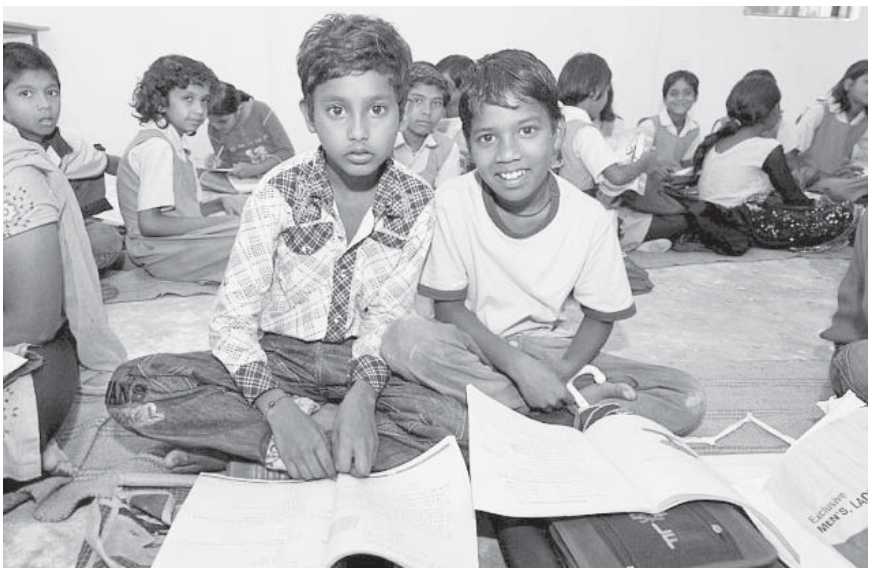

इनकार कर देता है। कभी-कभी बच्चा अपने स्कूल से दूसरे स्कूल को अच्छा बताता है। बच्चे से उस कथित अच्छेपन को जानने की जरूरत महसूस कीजिए।

अभिभावकों की जागरुकता ही कदाचित इस शिक्षा जगत में आ गई इन विकृतियों को दूर करने या रोकने में समर्थ हो पाए। शिक्षा पूरी तरह से व्यवसाय हो गई है। किसी जिंस को बेचने के लिए विज्ञापनों में वर्णित मनभावन कथ्यों की तरह हर स्कूल अपना प्रचार करता है। बहुत पैसा है इस व्यवसाय में। कमाई के लिए कुछ अवांछित लोग भी पैसे और प्रभाव के बल पर शिक्षा जगत में प्रवेश कर गए हैं, जिनका बाल-जगत या बाल-मन से कोई नाता नहीं है। वे नहीं जानते जो बच्चा उनके सामने है, वह भारत का भविष्य है। उनका बाल-मनोवृत्ति से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं है। उनका तो धन अर्जन ही एकमात्र लक्ष्य होता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि ऐसे स्कूल हैं ही नहीं हैं, जहां छात्र-छात्राओं का स्पर्श भी वर्जित है। स्कूल व्यवस्थापन जरा सी चूक पर ही शिक्षक को संस्थान से पृथक कर देता है। सातवीं कक्षा के जिस छात्र ने आत्महत्या की, उस मेधावी बालक के सुसाइड नोट की कुछ बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। उसने आत्महत्या को अपनी मजबूरी बताया है। मजबूरी इसलिए कि वह कौनसी सच्चाई है, जिसे वह नहीं जानता और जिसके सहारे उसकी बातों पर विश्वास किया जा सके। सच बोलने पर भी प्रताड़ना, पिटाई। बार-बार पिटाई। इस पिटाई को कैसे रोका जाए जो प्रतिपल आघात पहुँचा रही है। सर तो सर छात्र भी शामिल हैं। इस पिटाई का प्रतिकार? कदाचित यही छात्र की मजबूरी थी। कुछ दिन पूर्व एक ऐसे ही मजबूर छात्र ने बार-बार पीटे जाने से पीड़ित होकर आत्महत्या की थी। सर छात्र के गाल पर जोर-जोर से तमाचे मारते थे। गाल पर तमाचा मारना उसे अच्छा नहीं लगता था। इस कलंकित बुराई के शिकार उस छात्र ने भी दुनिया छोड़ दी। छात्र ने अपने सुसाइड नोट में लिखा- पापा उन सर के गाल पर आप चांटे जरूर मारना। बच्चों को पीटना या डराना-धमकाना प्रतिबंधित है, फिर भी प्रताड़ना का यह दुस्साहस समूची व्यवस्था को कटघरे में खड़ा करता है।

छोटे-छोटे बाल-मन संपूर्ण बाल-भवन हैं। इन्हें कम से कम स्कूलों में तो सुरक्षित और बुराइयों से दूर रखा जाना चाहिए। इनके अध्ययन की नींव गाली-गलौच, शराब, प्रताड़ना, ऊँच-नीच और मारपीट की बुराइयों से दूर भयमुक्त पवित्र संस्कारों में रखी जानी चाहिए। हमारी सरकार शिक्षा प्रणाली में तब्दीली करने को प्रयासरत है। देखना होगा सरकार के इस प्रयास में कितने प्रतिशत हिस्सा स्वस्थ शिक्षकों की नियुक्ति का होता है। ऐसे शिक्षक जो बच्चों से दुराभाव व दुराचार नहीं करे, उन्हें प्रताड़ित नहीं करे, ताकि किसी पिता को पुनः यह न कहना पड़े- पता होता तो स्कूल छुड़ा देता। ❑

Puranas & Itihasas Historical Sources, Europeans Dubbed Them Myths

❑ **Y. Sudershan Rao**

The first event that you organized, the Abul Kalam Azad Memorial Lecture, saw frayed tempers with former VC of MG University, Kerala, Rajan Gurukkal, openly challenging keynote speaker Dr SN Balagangandhara...

Professor Balagandhara is a very well known philosopher and theoretician. I invited him to speak because he's neither Marxist nor Rightist in his approach. His question to Indian historians was that do Indians need a history or a past and whether historiographical methods can be applied to our Itihasas and Puranas. According to him, our history-writing is influenced by Christian theology. His ideas are ahead of his time. Gurukkal, who was the commentator at the memorial lecture, called him intellectually shallow. Perhaps he has not read any of Balagangadhar's works. Rajan just wasn't prepared to accept any criticism.

But many historians were unhappy you invited a philosopher to talk about history...

Is history the domain of only professional historians? Marx was not a historian. Was (DD) Kosambi a historian? But they wrote history and gave us tools of analysis and historiographical procedures. These disciplinary borders only exist in India. Nowhere else in the world would people ask you if you have a Masters in History before you, say, deliver a talk on Ashoka. Philosophy is one area where all sciences or social sciences ultimately merge. This is why we award a doctorate of philosophy in all subjects.

So does India, according to you, need a history or a past?

History writing in India is just about 300 years old and is not exactly reflective of our past. The first generation of history writers in India was European, the second generation was nationalist and the third generation in the post-Independence era was dominated by Marxists, who use European tools of analysis. The Europeans have not considered Puranas and Itihasas as historical sources and simply called them myths. If Rama's story is not true then how has he survived in the collective memory for so long? People do not care whether Ram is historical or not. He is truth for them. India's need is a special study of its past and the truth of its past cannot be denied. We need to Indianise our history writing.

You say Ramayana and Mahabharata are "truths", but we have many versions of both in our country. So what is the real truth?

I am not here to question the beliefs of people. The content of one Ramayana may be different from the other but the existence of Ram, Sita and Ravan is consistent. That's the truth. I might not know anything about my great great grandfather but I can't deny his existence for lack of evidence or how else would I be here? Similarly Rama's existence need not be proved by historical procedure. What benefit are you (historians) going to get if you deny the existence of Rama? Why do you want to try to prove he is not there?

History writing in India has always been a Left Vs Right debate. Will you try to change it?

ICHR is willing to debate all issues but historians participating should have a scientific temper. They should

The first generation of history writers in India was European, the second generation was nationalist and the third generation in the post-Independence era was dominated by Marxists, who use European tools of analysis. The Europeans have not considered Puranas and Itihasas as historical sources and simply called them myths. If Rama's story is not true then how has he survived in the collective memory for so long? People do not care whether Ram is historical or not. He is truth for them. India's need is a special study of its past and the truth of its past cannot be denied. We need to Indianise our history writing.

not get emotional. (Rajan) Gurukkal, for instance, was emotional in his comments and he wanted to condemn everything. Adi Shankaracharya and Mandana Misra once participated in a debate on Veda and Karma where the adjudicator was Misra's wife herself. She declared Shankaracharya as the winner knowing well that her husband would have to renounce the world and be Shankaracharya's disciple. That should be the scientific spirit.

RSS reiterates that India is a Hindu country. How would you define a Hindu?

Hinduism is a term that has been coined recently. In ancient literature, we called it Sanatan Dharma. We didn't have a name for our religion because we had none. Perhaps we didn't have any religion before Buddhism. It was after Buddha's death that books were written on Buddhism and it became a cult or religion. Hindu in ancient times was a name given to people who were living to the east of the Indus river up to Kanyakumari. Hindus were religious, nonreligious and irreligious. As a historian, I look at it that way.

Would you want to reopen the debate on whether Aryans were invaders/settlers or indigenous?

Aryans are called outsiders only by colonial and Marxist writers. We have evidence that points to indigenous origin of Aryans. Scholars in India have been aware of it, but are they (Marxist historians) ready to accept it? One needs a scientific spirit for that. Even if we organize a debate here in ICHR, will those people (Marxist historians) be part of the discussion? For instance, it's a known finding that the city of Dwarka exists under water. Inspite of recent archeological evidences historians are still following colonial theories with regard to Hindu culture or Aryan debate.

What about suggestions that modern medical science was there in ancient India. For instance, Lord Ganesha and plastic surgery?

I don't think so. I think scientific concepts could have been there in ancient times but not actual examples of, say, plastic surgery.

Your appointment has is seen as a political decision. Historian Romila Thapar has said you haven't published in any peer reviewed journal.

That's her opinion. But have these questions been posed to any other chairperson before? Were these questions posed to Irfan Habib. He enjoyed two terms at ICHR. No media questioned him whether he was Marxist or with the Congress then. Romila Thapar is a historian and so am I. Do I need a certification from other historians to become the ICHR chairman? I have been appointed by the government and not a political party.❑

शैक्षिक फाउंडेशन द्वारा दिल्ली में व्याख्यान आयोजित

11 नवम्बर 2014 को दिल्ली विश्वविद्यालय के इंस्टिट्यूट ऑफ लाइफ लॉन्ग लर्निंग के सभागार में शैक्षिक फाउण्डेशन के द्वारा आयोजित व्याख्यान में मुख्य वक्ता मा. इन्द्रेश कुमार जी ने (राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य-राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एवं मुस्लिम राष्ट्रीय मंच के संस्थापक) 'जम्मू और कश्मीर ऐतिहासिक सन्दर्भ एवं वर्तमान चुनौतियाँ' विषय पर अपने विचार दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षकों के समक्ष रखा। उन्होंने संविधान की धारा 370 की अनुपयोगिता को दर्शाते हुए कहा कि यदि कोई इससे 5 फायदे बता दे तो यह धारा आगे जारी रखी जानी चाहिए अन्यथा इससे हटा देना चाहिए।

इस अवसर पर दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति प्रोफेसर दिनेश सिंह ने कहा कि यद्यपि उन्हें जम्मू और कश्मीर के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है फिर भी ऐसी नीतियाँ बनाई जानी चाहिए जिनसे इस क्षेत्र का विकास हो सके और वहाँ के नागरिक मुख्य धारा में शामिल हो सके।

कार्यक्रम की अध्यक्षता शैक्षिक फाउंडेशन के अध्यक्ष प्रो. के. नरहरि ने की। उन्होंने जम्मू-कश्मीर के भारत में विलय में सरदार बल्लभ भाई पटेल के प्रयासों की चर्चा की।

इस अवसर पर शैक्षिक फाउंडेशन के सचिव श्री महेन्द्र कपूर ने शैक्षिक फाउन्डेशन के कार्य और विचार के बारे में उपस्थित लोगों को जानकारी दी। इस अवसर पर अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के अध्यक्ष डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल, महामंत्री प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल, प्राथमिक संवर्ग के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री जगदीश सिंह चौहान, महिला संवर्ग की राष्ट्रीय संयुक्त मंत्री डॉ. सुदेश शर्मा और शैक्षिक फाउंडेशन के कोषाध्यक्ष एवं दिल्ली अध्यापक परिषद के अध्यक्ष श्री जय भगवान गोयल, एनडीटीएफ के पूर्व अध्यक्ष प्रो. इन्द्रमोहन कपाही, डॉ. राजवीर शर्मा भी कार्यक्रम में उपस्थित थे।

कार्यक्रम का संचालन दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ. वीरेन्द्र भारद्वाज तथा आभार डॉ. अनुराग मिश्रा ने किया।

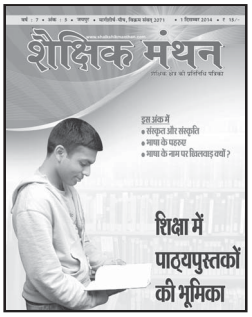

प्रश्न उठता है कि क्या एक केंद्रीय विश्वविद्यालय में धार्मिक नजरिए के आधार पर काम चलेगा या वह लैंगिक समानता की सुरक्षा के इर्दगिर्द संचालित होगा। यह किसी भी तर्क और समझ से परे है कि जगह की कमी के कारण प्रशासन एक हिस्से को वंचित कर दे और फिर सफाई पेश करे कि आप के वहां जाने लायक जगह नहीं है। कुछ समय पहले किसी पत्रकार से बात में यह भी पता चला था कि विश्वविद्यालय में कुछ लोगों को यह भी लगता है कि लड़कियों के लाइब्रेरी में आने से छात्रों का ध्यान भंग होगा और वे पढ़ाई में मन नहीं लगा पाएंगे। यानी जो अपना ध्यान भंग करे, सजा उसे नहीं बल्कि लड़कियों को। दरअसल, वंचितों और पीड़ितों को ही सजा देने की मानसिकता हमारे समाज में धड़ल्ले से चलन में बनी हुई है और उसे वैधता प्रदान करने वाले लोग भी मौजूद हैं।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय प्रकरण

शिक्षण संस्थानों में लैंगिक भेदभाव

❑ अंजलि सिन्हा

इसे एक विचित्र संयोग ही कहा जा सकता है कि स्वतंत्र भारत के पहले शिक्षा मंत्री एवं तमाम शैक्षिक संस्थानों की नींव डालने में अहम भूमिका अदा करने वाले मौलाना आजाद के जन्मदिवस के दिन ही खबर आई कि उनके नाम पर अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में बनी लाइब्रेरी में लड़कियां नहीं जा सकती। यह मुद्दा पहले भी यहां की छात्राओं तथा महिला शिक्षकों द्वारा उठाया जा चुका है, मगर इस भेदभाव को दूर करने के लिए कुछ नहीं किया जा सका। इस बदलते वक्त में भी जबकि लड़कियां उच्च शिक्षा में जोरदार ढंग से आगे बढ़ रही हैं, तब कहां तो विश्वविद्यालय प्रशासन को अपनी गलती पर अफसोस करना चाहिए था तथा तत्काल इस भेदभाव को समाप्त करना चाहिए था, लेकिन कुलपति सहित पूरा प्रशासन इसे वाजिब ठहराने में लगा रहा। बाद में पता चला कि स्वयं मानव संसाधन मंत्रालय ने इस मामले में दिलचस्पी ली है और इस 'भेदभाव' को लेकर विश्वविद्यालय को लिखा है। मामला इस तरह सामने आया, कुलपति लेफ्टिनेंट जमीरुद्दीन शाह ने कहा कि यदि मौलाना आजाद लाइब्रेरी लड़कियों के लिए खुली तो लड़कों की संख्या चौगुनी बढ़ जाएगी। उन्होंने लड़कियों को इस लाइब्रेरी का सदस्य नहीं बनाने के नियम का बचाव करते हुए कहा कि हमारी लाइब्रेरी में जगह की कमी है इसलिए यहां लड़कियों के आने पर पाबंदी है।

यूनिवर्सिटी से जुड़े महिला कॉलेज की प्रिंसिपल ने भी कुलपति के सुर में सुर मिलाते हुए कहा कि यद्यपि लड़कियों को भी लाइब्रेरी की सुविधा मिलनी चाहिए लेकिन क्या आप ने कभी देखा कि वह किस तरह लड़कों से भरी रहती है, वहां लड़कियां कैसे जाएंगी। उनका कहना था कि अगर लड़कों से ठसाठस भरी लाइब्रेरी में लड़कियों को भी प्रवेश दे दिया गया तो व्यवस्था संबंधी अराजकता की समस्या उत्पन्न हो जाएगी। उधर लाइब्रेरी के लाइब्रेरियन भी इसके खिलाफ हैं कि छात्रायें वहां आएं। उनका सुझाव है कि यदि लड़कियों को किताबें चाहिए तो वे उन्हें बता दें, उन्हें किताबें उपलब्ध करा दी जाएंगी ताकि उनके यहां आने की जरूरत न पड़े। गौरतलब है कि महिला कॉलेज की यूनियन की प्रेसिडेंट हों या उसके अन्य पदाधिकारी, सभी ने इस मशहूर लाइब्रेरी के इस्तेमाल की सुविधा लड़कियों को भी देने की मांग की है। सौ साल पुराना यह महिला कॉलेज अब्दुल्ला हॉल में बना है और विश्वविद्यालय में लड़कियों की स्नातक कक्षाओं के लिए यही एकमात्र कॉलेज है। विगत सरकार के दौरान भी छात्राओं के शिष्टमंडल ने तत्कालीन मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल से बात कर लैंगिक भेदभाव की इस स्थिति से अवगत कराया था और मांग की थी कि उन्हें भी पुरुष छात्रों की तरह मौलाना आजाद लाइब्रेरी का इस्तेमाल करने दिया जाए, जो एशिया के अग्रणी पुस्तकालय के तौर पर जाना जाता है।

अलीगढ़ मुस्लिम विविद्यालय देश के तमाम केंद्रीय विश्वविद्यालयों की तरह ही है जो सीधे केंद्र सरकार के मातहत आता है। ऐसे में यहां छात्राओं को बराबरी के अधिकार से वंचित करने तथा भेदभावपूर्ण व्यवहार के दोषी अधिकारियों पर कार्रवाई की जानी चाहिए, न कि उनसे यह पूछा जाना चाहिए कि वे किन कारणों से ऐसा करते हैं। यदि वाकई लाइब्रेरी में छात्रों की जबरदस्त भीड़ रहती है तथा जगह की कमी है, तो इसका खमियाजा लड़के-लड़कियां दोनों भुगतें या फिर प्रशासन इस समस्या से निजात पाने का अन्य तरीका निकाले। फिर चाहे लाइब्रेरी की बिल्डिंग का विस्तार करना हो या अन्य कोई नवीनीकरण। अगर भीड़ की समस्या है तो विश्वविद्यालय प्रशासन स्नातक कक्षा के छात्र-छात्राओं के लिए अलग और स्नातकोत्तर कक्षाओं के छात्र-छात्राओं के लिए अलग समय निर्धारित कर सकता है, मगर सिर्फ लड़कियों को रोकना किस आधार पर जायज ठहरता है। दरअसल इसके पीछे कहीं न कहीं छात्र एवं छात्राओं को एक-दूसरे से अलग रखने की भावना काम करती दिख रही है, जिसकी हिमायत

मुस्लिम बहुल समाजों के रूढ़िवादी तत्वों की तरफ से की जाती रहती है। प्रश्न उठता है कि क्या एक केंद्रीय विश्वविद्यालय में धार्मिक नजरिए के आधार पर काम चलेगा या वह लैंगिक समानता की सुरक्षा के इर्दगिर्द संचालित होगा। यह किसी भी तर्क और समझ से परे है कि जगह की कमी के कारण प्रशासन एक हिस्से को वंचित कर दे और फिर सफाई पेश करे कि आप के वहां जाने लायक जगह नहीं है। कुछ समय पहले किसी पत्रकार से बात में यह भी पता चला था कि विश्वविद्यालय में कुछ लोगों को यह भी लगता है कि लड़कियों के लाइब्रेरी में आने से छात्रों का ध्यान भंग होगा और वे पढ़ाई में मन नहीं लगा पाएंगे। यानी जो अपना ध्यान भंग करे, सजा उसे नहीं बल्कि लड़कियों को। दरअसल, वंचितों और पीड़ितों को ही सजा देने की मानसिकता हमारे समाज में धड़ल्ले से चलन में बनी हुई है और उसे वैधता प्रदान करने वाले लोग भी मौजूद हैं।

उदाहरण के तौर पर, अभी पिछले साल की बात है कि इसी अलीगढ़ जिले के अतरौली कस्बे के केएमबी इंटर कॉलेज में लड़कियों को दाखिला नहीं दिया गया। गत वर्ष कॉलेज परिसर में छेड़खानी की कई घटनाएं हुई तथा कॉलेज में पुलिस भी बुलानी पड़ी थी, इससे बचने के लिए प्रबंध समिति ने यह निर्णय लिया। अलीगढ़ के शिक्षा संस्थानों की यह खबरें हरियाणा के महेंद्रगढ़ जिले की ऐसी ही खबरों की याद दिलाती हैं, जहां समाज की तरफ से उन पर बंदिशें लगाई जा रही हैं। मई माह में खबर आई थी कि इस जिले के पाल, गडानिया, खेरकी, निहालवास, कुकसी और पाला गांव की सामूहिक पंचायत ने यह निर्णय लिया कि वह अपने यहां की लड़कियों को स्कूल नहीं भेजेंगे। वजह बताई गई कि लड़कियों के साथ छेड़खानी की घटनाओं को रोकने में पुलिस की नाकामी को देखते हुए वह ये निर्णय ले रहे हैं। अगर लड़कियों को अपनी सुरक्षा की गारंटी के लिए सिर्फ कन्या विद्यालय में जाना पड़े तथा लड़के अपने साथ पढ़ने वाली सहपाठियों को तंग करना एवं उन्हें शिकार बनाना अपना अधिकार समझें, तो यह मानसिकता कैसे समाज का निर्माण करेगी? स्कूल-कॉलेज सहित सभी शिक्षण संस्थाओं को सुरक्षित रखना प्रबंधन की जिम्मेदारी बनती है तथा सभी विद्यार्थियों को हक है कि वे बिना बाधा के ज्ञानार्जन करें। यदि ये संस्थान धार्मिक संवेदनाओं के आधार पर एक तबके को ज्ञान से लाभान्वित होने से वंचित करेंगे तो कैसे चलेगा? इन संस्थानों को लड़कियों और महिलाओं को बराबरी की नजर से देखने की भी जिम्मेदारी उठानी चाहिए। आखिर इन समस्याओं के प्रति पलायन से उस स्कूल-कॉलेज का भी क्या भला होगा! ❑

Class X Board: Children Put to Test, Again

Exams may become mandatory; Sibal made it optional to reduce stress levels. Class X board exams may soon be made mandatory again in CBSE schools, a move that would mark the second big reversal of education policy by Union Human Resource Development minister Smriti Irani in the six months since the Modi government has been in charge. In June, she threw her weight behind the move to roll back Delhi University's four-year undergraduate programme to the more traditional three years. Irani's predecessor Kapil Sibal had made Class X board exams optional for all Central Board of Secondary Education (CBSE) students in 2011 to reduce stress levels as part of an education system overhaul.

The proposal to make the exam compulsory again will be discussed at the next meeting of the Central Advisory Board of Education (CABE), the high est consultative body on the subject, which could be scheduled right after the winter session of Parliament, as per top ministry officials. "The decision cannot be taken unilaterally by the ministry . It has to be discussed at the CABE meet where all state representatives will be present," said a ministry official, who did not wish to be identified.

Irani is said to have received many request to review Sibal's decision, the latest at a meeting with children on the occasion of Inter national Students Day. According to them, the absence of a board exam in Class X fostered a "lackadaisical" attitude in class and the Continuous Comprehensive Evaluation (CCE) system that has replaced it doesn't prepare them for the "pressure" of the board exam in Class XII. "It is heartening and surprising that students want examinations," Irani said at the meeting. Officials said she will raise the issue with PM Modi.

Students can currently opt to appear for the CBSE Class X exam in case they want to move to another school board in Class XI, for instance. Alternatively , they can also sit for exams conducted by their schools. This year, out of 11 lakh students in Class X, about 55% took the school test and 45% the board exam. Some say the old system was discriminatory . "The brighter lot of students who are always competitive want board examinations back. Some of us are happier with CCE," said a student of DPS RK Puram.

A CABE sub-committee headed by former Haryana education minister Geeta Bhukkal took the opposite view and in fact wants board exams made mandatory in Class VIII as well.

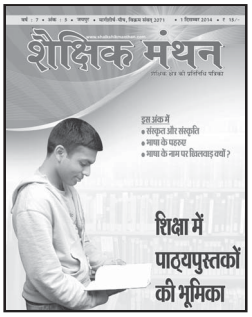

मध्याह्न भोजन : बच्चों के स्वर्णिम भविष्य का आधार

❑ डॉ. अनीता मोदी

किसी भी देश का समग्र विकास शिक्षा से ही संभव है। सामाजिक आर्थिक विकास की राह में सबसे बड़ा अवरोध निरक्षरता है, जिसे दूर करके ही एक देश विकास-पथ पर आगे बढ़ सकता है। व्यक्ति, समाज और देश के विकास में शिक्षा की भूमिका को रेखांकित करते हुए शिक्षा को विकास की सीढ़ी, परिवर्तन का माध्यम और आशा के अग्रदूत के रूप में रेखांकित किया गया है। स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने भी प्राथमिक शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एक शिक्षा सम्मेलन में कहा था, 'बुनियादी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है, क्योंकि उसके बगैर वह बतौर नागरिक जिम्मेदारियां बखूबी नहीं निभा सकता है।' नि:संदेह, किसी भी देश के विकास में प्राथमिक शिक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह भावी पीढ़ी का निर्माण करती है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी देश की प्रगति के लिए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य शर्त के रूप में स्वीकार किया, क्योंकि उनके मतानुसार आज के बच्चे ही कल के राष्ट्र के पिता हैं। देश को सम्पूर्ण साक्षर बनाने तथा समाज के सभी वर्गों तक शिक्षा की पहुँच सुनिश्चित करने के लिए भारत सरकार सतत प्रयत्नशील व कटिबद्ध है। देश को पूर्ण साक्षर देश के रूप में परिवर्तित करने हेतु सरकार अनेक है। इन्हीं योजनाओं में से सर्वाधिक महत्वाकांक्षी व प्रभावशाली योजना मध्याह्न भोजन योजना है, जो कि विश्व का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। इस योजना की घोषणा 15 अगस्त, 1995 में भारत सरकार ने केन्द्र अनुदानित एक योजना 'प्राथमिक शिक्षा को पोषक आधार देने का राष्ट्रीय कार्यक्रम' के रूप में की। वर्तमान में यह योजना देश के प्रत्येक राज्य की सभी स्कूलों की दिनचर्या का अभिन्न अंग बन गई है।

इस योजना का मूलभूत उद्देश्य बच्चों का विद्यालयों में नामांकन, उपस्थिति व ठहराव को बढ़ाना है, ताकि शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्य को हासिल किया जा सके। इसके साथ ही, इस योजना का उद्देश्य बच्चों के लिए पोषाहार को सुनिश्चित करते हुए उनके स्वास्थ्य व पोषण-स्तर में सुधार लाना है। मध्याह्न भोजन योजना देश के बच्चों के लिए शिक्षा के द्वार खोलकर उनके समग्र विकास हेतु अनवरत प्रयासरत है। गौरतलब है कि गरीबी, अल्परोजगार व बेरोजगारी जैसी भयावह समस्याओं के कारण बच्चे न केवल शिक्षा की रोशनी से वंचित रह जाते हैं, अपितु भर

इस योजना का मूलभूत उद्देश्य बच्चों का विद्यालयों में नामांकन, उपस्थिति व ठहराव को बढ़ाना है, ताकि शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उद्देश्य को हासिल किया जा सके। इसके साथ ही, इस योजना का उद्देश्य बच्चों के लिए पोषाहार को सुनिश्चित करते हुए उनके स्वास्थ्य व पोषण-स्तर में सुधार लाना है। मध्याह्न भोजन योजना देश के बच्चों के लिए शिक्षा के द्वार खोलकर उनके समग्र विकास हेतु अनवरत प्रयासरत है। गौरतलब है कि गरीबी, अल्परोजगार व बेरोजगारी जैसी भयावह समस्याओं के कारण बच्चे न केवल शिक्षा की रोशनी से वंचित रह जाते हैं, अपितु भर पेट पर्याप्त पोषक आहार उपलब्ध नहीं होने से भुखमरी, कुपोषण व अल्पपोषण जैसे दंशों से आहत है। मध्याह्न भोजन कार्यक्रम बच्चों की भूख को शांत करने तथा उनको पोषाहार प्रदान करने के दृष्टिकोण से वरदान है।

पेट पर्याप्त पोषक आहार उपलब्ध नहीं होने से भुखमरी, कुपोषण व अल्पपोषण जैसे दंशों से आहत है। मध्याह्न भोजन कार्यक्रम बच्चों की भूख को शांत करने तथा उनको पोषाहार प्रदान करने के दृष्टिकोण से वरदान है। ज्ञातव्य है कि मुख्य रूप से दलित आदिवासी व ग्रामीण गरीब परिवारों के बच्चे शिक्षा से वंचित रहते हैं, जिसके कारण देश में सामाजिक भेदभाव की लकीर गहरी हो रही है। ऐसी स्थिति में मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के माध्यम से विभिन्न जातियों व वर्गों में भेदभाव, छूत-अछूत व वैमनस्य जैसी कुत्सित प्रवृत्तियों पर कुछ सीमा तक अंकुश लगाया जाना संभव है। इसी भांति, गरीबी का दंश बालिकाओं को अधिक सहना पड़ता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण आदि सभी क्षेत्रों में बालिकाएं भेदभाव का शिकार होने के कारण निरक्षर, कमजोर व असहाय हो जाती है। मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के कारण लैंगिक भेदभाव की दीवारें गिराकर लैंगिक समानता की ओर कदम बढ़ाना संभव है। इस योजना के सफल कार्यान्वयन से देश के बच्चों को खाद्य सुरक्षा का कवच प्रदान करते हुए उनके भविष्य को सुखद व उज्ज्वल बनाया जाना संभव है।

इस योजना के क्रियान्वयन स्तर पर अनेक कमियां, विसंगतियां व त्रुटियां भी पाई गई हैं। सर्वप्रथम अनेक विद्यालयों में खाना पकाने हेतु आवश्यक आधारभूत सुविधाएं अपर्याप्त है। रसोई भंडार गृह व उचित पेयजल आपूर्ति की व्यवस्था अपेक्षित स्तर पर नहीं होने से भोजन की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसी भांति, खाद्यानों के माप-तौल की उपयुक्त व्यवस्था तथा खाद्यान्न पकाने हेतु आवंटित बजट में बढ़ोतरी किया जाना अपेक्षित है। इस योजना के संदर्भ में सर्वाधिक निराशाजनक तथ्य है कि इस योजना के क्रियान्वयन हेतु अध्यापकों को दो से तीन घंटे तक का समय नियोजित करना पड़ता है। इसकी वजह से शिक्षण कार्य- बाधित होता है, शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः इस योजना के क्रियान्वयन हेतु ऐसी वैकल्पिक व्यवस्था का ठोस प्रावधान किया जाना चाहिए, ताकि शिक्षकों के शिक्षण-कार्य में कोई कटौती नहीं हो तथा बच्चों का शिक्षा के प्रति रुझान बढ़ सके। ❑

Schools asked to Focus on hygiene & cleanliness

In what could be a pretty demanding Children's Day pledge this year, the Narendra Modi government has directed all schools under its ambit to ensure that morning assembly in government schools focus on cleanliness and hygiene, and urge students to keep the statue in their school, if any, clean, besides clean their classrooms, laboratories, libraries, playground, toilets, drinking water areas and school gardens. In a recent directive to Kendriya Vidyalaya Sangathan and Navodaya Vidyalaya Samiti, the department of school education and literacy under the ministry of human resource and development, has asked all schools to ensure that children discuss cleanliness and hygiene in the school assembly every day, and that each school forms a children's cabinet to supervise and monitor the cleanliness initiative. The move is in sync with the government's vision of Clean India by 2019, and aims to ensure that all schools have separate toilets for girls and boys by July 2015. The schools that will have to follow the directive include 1092 Kendriya Vidyalas under the Kendriya Vidyalaya Sangathan and 598 Jawahar Navodaya Vidyalas under the Navodaya Vidyalaya Samiti, impacting nearly 15 lakh students in government schools across the country.

"The government of India has directed its own schools through the Kendriya Vidyalas and the Navodya Vidyalas to celebrate the Swachh Vidyalaya Abhiyan by taking up a programme for cleanliness in schools on a round the year basis," the government has informed the ministry of drinking water and sanitation, which is overseeing the implementation of the project.

"The Kendriya Vidyalaya Sangathan and the Navodaya Vidyalaya Samiti have been asked to take up, inter alia, the following activities that include talk by a few children on different aspects of cleanliness in the school assembly every day, especially with respect to sayings and teachings of Mahatma Gandhi on cleanliness and hygiene," the note sent by the department of education to the implementing ministry said.

Besides, the department of education has also directed these schools to continue with the Swachh Vidyalaya Abhiyan beyond October 31, 2014, by organising film shows, model activities on hygiene, periodic essay/painting and other competition, role plays, etc., to reassert the message of Swachh Bharat-Swachh Vidyalaya.

Justifying the decision that's expected to impact the regular course of teaching in these schools, the note said, "In collaboration with the state governments, we are making efforts to inculcate the spirit of hygiene, cleanliness and aversion to unhygienic conditions in all children from the very initial years of their school itself." The Swachh Bharat Abhiyan, launched by Prime Minister Narendra Modi on October 2, involves an investment of Rs 1,96,009 crore to construct 12 crore toilets across the country. The mission will culminate on October 2, 2019, which will mark the 150th birth anniversary of Mahatma Gandhi. ❑

शिक्षा की त्रिवेणी

आवेग, संवेग विहीन ज्ञान के इस हस्तानान्तरण से जिसमें शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों का ही मनोयोग शून्य है, वहाँ इन बोझिल, उबाऊ पुस्तकों से संस्कारवान मौलिक नागरिक निर्मित हो सकेंगे ऐसी अपेक्षा रखना कतई तर्कसंगत नहीं है। ज्ञान की भारी भरकम पुस्तकों के बजाय बालक की सहज इच्छाओं का समाधान कर आगे बढ़ाने वाली, जीवनोपयोगी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली, समाज एवं राष्ट्रीय गौरव का जागरण करने वाली पुस्तकें हों, ताकि उनसे सच्चे राष्ट्रभक्त नागरिकों का निर्माण कर सकें, जो शिक्षा का अभिष्ट भी है एवं राष्ट्र की आवश्यकता भी है।

❑ भरत शर्मा 'भारत'

सनातन काल से ही शिक्षा की त्रिवेणी शिक्षक, शिक्षार्थी और पुस्तकों के माध्यम से प्रवाहित होती रही है। वर्तमान परिपेक्ष्य में भारतीय शिक्षा की दशा और दिशा चिन्तनीय स्तर तक गिरती जा रही है। जिसका दोष इन तीनों कारकों में किसी एक के माथे मढ़ना सर्वथा अनुचित होगा।

एक ओर जहाँ आज के शिक्षार्थियों में बिना परिश्रम उन्नत परीक्षा परिणाम की ललक, स्वाध्याय का अभाव, पास बुक्स व कुंजियों की मदद से रट कर उत्तर देने की प्रवृत्ति, सृजनात्मकता एवं मौलिकता से विमुख होना इत्यादि प्रवृत्तियों के चलते ये शिक्षार्थी मौलिक गुणवत्ता की कसौटी पर खरे नहीं उतर पाते। लिहाजा साक्षरता के आँकड़ों की वृद्धि के साथ स्नातक और अधिस्नातकों की संख्या में भी बेतहाशा वृद्धि होना व बेरोजगारों की भीड़ बढ़ना, इस शिक्षा पद्धति के लिए कोई अतिश्योक्तिपूर्ण बात नहीं है।

जहाँ शिक्षकों की बात आती है, वहाँ यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि शिक्षक वर्तमान में कर्त्तव्यों से ज्यादा अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। यदि इस दृष्टिकोण में बात को उलट कर रख दिया जाय कि कर्त्तव्य पहले और अधिकार बाद में तो सम्पूर्ण शिक्षा जगत का चित्र ही बदल जायेगा।

आज का शिक्षक पाठ्यक्रम की बाध्यताओं में कैद होकर अपने अनुभूत ज्ञान से बच्चों को लाभान्वित नहीं करवा पा रहे हैं, साथ ही उनमें भी स्वाध्याय नवोन्मेषण की प्रवृत्ति का धीरे-धीरे लोप हो रहा है। वे स्वयं सरकारी तंत्र की यांत्रिकता का एक भाग भर मानकर सिमट चुके हैं। कहने को तो इन्हें भारतीय ज्ञान परम्परा का 'वाहक' एवं 'प्रतीक' माना जाता है, जिस पर गर्व कर ये अभिभूत है, परन्तु शिक्षार्थी के साथ एकाकार होकर ज्ञान का संचरण एवं संवहन करने वाले इतने बड़े समुदाय में हैं ही कितने, ये इस समुदाय के लिए सोचनीय बिन्दू है।

त्रिवेणी के तीसरी धारा की बात करते हैं, तो वह है, 'पुस्तकें'। औपचारिक शिक्षा में बालकों की आयु वर्ग एवं कक्षा के स्तरों के अनुरूप पुस्तकों का निर्धारण किया जाता है। इन पुस्तकों को 'पाठ्यपुस्तक' कहा जाता है। ये पाठ्यपुस्तकें बाल मनोविज्ञान के साथ-साथ देशकाल और परिस्थितियों को भी अपने में समाहित रखती हैं। इन पुस्तकों को सदाचार, सम्मान, राष्ट्रभक्ति, सत्य के प्रति आग्रह, निष्ठा, कर्मशीलता इत्यादि चारित्रिक जीवन मूल्यों का समावेश सहज रोचकता के साथ अध्ययन-अध्यापन के दौरान ही सहज रूप से ही बालमन में भर दिया जाता रहा है। लेकिन शिक्षा जैसे क्षेत्र पर राजनीतिज्ञों के दबदबों के फलस्वरूप इस भावी भविष्य को भी अपने अतीत के गौरव से अन्जान रखने और संस्कारों से परे रखने के कुत्सित प्रयास अनवरत होते रहे हैं। जिनसे वर्तमान पुस्तकें भी अछूती नहीं रही है।

कुर्सियों के बदलने के साथ-साथ कलम पकड़ने वाले भी बदलते चले गये और इन तथाकथित कुर्सी उपासक कलमकारों एवं व्यवस्था से जुड़े अन्य वर्गों द्वारा जो पाठ्यक्रम एवं पुस्तकें निर्धारित की गयीं, इन पुस्तकों का शिक्षार्थियों के बालमनोविज्ञान से संदर्भित होना तो दूर वो स्थानीय पृष्ठभूमि, जलवायु, वातावरण एवं भौगोलिकता से तदात्म्य एवं सामंजस्य बनाने में असफल है। वर्तमान की इन पुस्तकों में संवेदनहीन सूचनाओं का अथाह भण्डार भर दिया है, जिनको शिक्षक और शिक्षार्थी मशीन की तरह एक युक्ति से दूसरी युक्ति तक यांत्रिकबद्धता से हस्तानान्तरित कर रहे हैं।

आवेग, संवेग विहीन ज्ञान के इस हस्तानान्तरण से जिसमें शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों का ही मनोयोग शून्य है, वहाँ इन बोझिल, उबाऊ पुस्तकों से संस्कारवान मौलिक नागरिक निर्मित हो सकेंगे ऐसी अपेक्षा रखना कतई तर्कसंगत नहीं है। ज्ञान की भारी भरकम पुस्तकों के बजाय बालक की सहज इच्छाओं का समाधान कर आगे बढ़ाने वाली, जीवनोपयोगी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने वाली, समाज एवं राष्ट्रीय गौरव का जागरण करने वाली पुस्तकें हों, ताकि उनसे सच्चे राष्ट्रभक्त नागरिकों का निर्माण कर सकें, जो शिक्षा का अभिष्ट भी है एवं राष्ट्र की आवश्यकता भी है।

'सदपुस्तक है मित्र सम, असद् शत्रु के मान
नीर क्षीर आचार्य हो, जिनसे बढ़ता ज्ञान।।'

(लेखक वरि. अध्यापक आंग्ल भाषा)

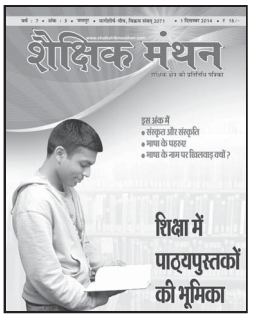

Whatever the circumstances, the learning never stopped one way or the other. As we grew older, instead of questioning stereotypical, repressive norms, we began to question our ability to pick up new skills I don't have an aptitude for languages; I have two left feet; I have no head for numbers we said and stayed put in our comfort zones. What we denied ourselves were not always things we did not enjoy, often, these were things we would be most happy doing.

Life Long Learning

Living to Learn

❑ **Shefali Tripathi Mehta**

Many years ago, I called home to speak with my mother and was told that she had gone for cooking classes. My mother, the indisputable Master Chef of all our circles, was still learning to make new dishes! That she was in her 70s and had been through a major illness that had left us all deeply anxious for her well-being were relatively trivial matters.

We are conditioned to relate learning with youth; with school and university lessons; with learning skills for a job or hobby. So our learning is more or less accomplished by middle age when we comfortably ensconced in our jobs and a pattern of living. Those books on history, math, language and science have no place in our lives anymore.

Did you have your 10 almonds today to keep your memory sharp? Or, if you are following the western practice, probably some ginkgo biloba or sage? How about learning a new skill; picking a new hobby; or challenging your limits? That, say experts, are the best ways to grow your mind.

Let us consider this typical scenario people watching a fire performance. When the audience is invited to try a hand at it, guess who will volunteer? Kids even unwilling ones will be pushed forward by parents or adults accompanying them. Older people prefer to remain spectators. And this is true in the larger picture of our lives we gradually take a back seat, slowly stop participating, and become spectators.

Born to learn

Men are often capable of greater things than they perform. They are sent into the world with bills of credit, and seldom draw to their full extent, said Horace Walpole.

We came into this world as helpless little creatures who needed to be clothed, fed and soothed. We learned to walk and speak; do math and swim; act in plays and lead teams. The world was

our oyster we created our lives learning one thing after another.

Whatever the circumstances, the learning never stopped one way or the other. As we grew older, instead of questioning stereotypical, repressive norms, we began to question our ability to pick up new skills I don't have an aptitude for languages; I have two left feet; I have no head for numbers we said and stayed put in our comfort zones. What we denied ourselves were not always things we did not enjoy, often, these were things we would be most happy doing.

Why does a middle-aged immigrant pick up a native language but most of us admit we cannot learn a foreign language? Perhaps we are using age-old beliefs or research that younger people learn more easily as a ruse to not challenge ourselves? A 50 year old can learn to dance as well as a five year old. Of course, there are savants, precocious kids and geniuses, but did we drop out of class V because there were 10 others doing better at Math or English? Let's consider some examples of people around us, those who we can emulate rather than idolise.

It is true that we will learn things that we are passionate about because memory and learning are closely associated with emotions, which is why permanent learning almost always has an emotional component. A friend tells of a woman over 30 who started to learn Bharatnatyam dance along with her young daughter. The back story is that she had always wanted to dance and would hide behind doors to watch her sister who was being taught dance as she was the prettier of the two. This lady was able to fulfil her desire so many years later, even though it demanded more from her with increased responsibilities of home, family and a job.

It is true that we will learn things that we are passionate about because memory and learning are closely associated with emotions, which is why permanent learning almost always has an emotional component.A friend tells of a woman over 30 who started to learn Bharatnatyam dance along with her young daughter. The back story is that she had always wanted to dance and would hide behind doors to watch her sister who was being taught dance as she was the prettier of the two. This lady was able to fulfil her desire so many years later, even though it demanded more from her with increased responsibilities of home, family and a job.

No absolute truths

Adult learning would be a lot facile if the problem of perception did not weigh it down so much. The good news is that for all the mental roadblocks such as, how will it look to learn new things at this age and what will people think, a recent study shows others think less of us than we imagine them to. A young boy learning to play basketball is learning to play basketball while an older person learning to play basketball is learning to play it with the added pressure of something akin to stage fright How am I doing? Am I learning quick enough? What are the others thinking, saying? Confidence is the greatest aid for learning.

Just as parents feel proud watching their kids learn new things, children too experience such pride. Shalini Ramachandrans heart swells with pride and joy when she talks of her mother who overcame her fear of water and learned to swim in her early 50s. And Saroj Juneja at 55, did the most amazing thing when the swimming coach refused to teach her saying it was too late, she observed others, asked questions, and learnt it herself! The only people who learn are those that are so desperate to learn that they do it despite conditions being unfavourable.

Recently, I met an amazing foot artist, Sheela from Lucknow. Sheela lost both her hands in a train accident when she was four. She watched other kids draw and write and slowly began to train herself to hold the pencil between her toes. The brush soon replaced the pencil. Sheela completed schooling, a Bachelor's degree in Fine Arts, and is an artist with the National Lalit Kala Kendra, Lucknow. For a woman from a large family of six siblings and limited means, having a disability as restricting as this, these were not mere roadblocks but mountains that she moved to learn what she was passionate about. How many of us have looked at a painting and sighed, Wish I could paint too And why not? What is our excuse?

Ekalavyas all

Imagine being invisible when attending a class one wants to as an older student. This is the kind of anonymity the Internet offers. Technology has opened up such a wide, new world of learning

before us. It is far easier now to follow our dreams with technology not just making learning accessible, but allowing us to first try our hand at stuff and gain confidence in private.

In high school, a classmate with who I was doing a project asked if Sonia Gandhi was Rajiv Gandhi's sister. She may have never set her sight on the UPSC, but Indira Gandhi was prime minister, and it must be hard to not know. Every film theatre screened the documentary in which Indira Gandhi was shown telling her grandchildren why the colour of blood is red while the parents Sonia and Rajiv smiled and looked on. I was gobsmacked, not by her ignorance, but by her courage to admit it, and finally learn than to never do. Now, of course, the Internet saves everyone face.

Mable Thomas is an IT professional with a passion for designing clothes. She designed clothes for family and friends working late into the nights, creating designs, learning and experimenting along with her full-time job. Most initial learning happened on the Internet YouTube tutorials, sewing blogs and online communities. It gave her enough confidence to quit her job; complete a professional course in designing clothes and start her own label. Alka Shingwekar who loves learning new things also considers the Internet her guru. An MBBS and MBA degree did not stop her from exploring other diverse interests. She taught herself several programming languages, website design, photoshop, sewing, painting, piano, woodwork and gardening. She loves the freedom and instant help Internet forums provide.

Thousands of people around the world are using online tutorials to learn things they always wanted to. If you are not willing to learn, no one can help you; if you are determined to learn, no one can stop you, goes a popular saying.

Learning is growing

Life is about continuous learning, growing, evolving and embracing change in short, continually trying to get our sea legs at new things. Our mental horizons are forever expanding with knowledge of new cultures and cuisines through travel, TV or reading; we are picking up life skills everyday riding a Metro, using a smart phone; we are learning to manage relationships resolving conflicts, understanding other perspectives; and we are each constantly evolving as the person we are emotionally, spiritually or intellectually.

In times of change, learners inherit the earth, while the learned find themselves beautifully equipped to deal with a world that no longer exists (Eric Hoffer). This is particularly true for professionals. Continuous learning is crucial in this fast-changing world for people to not become professionally obsolete. Teachers must learn to use technology; human resource personnel must keep up with the latest policies such as the evolving definitions of sexual harassment; writers should learn the politically-correct terminology to use, for example, to refer to people with disabilities. The edge learning provides is phenomenal. It is people who do not stop learning and acquiring new skills that keep growing and excelling. Besides staying current and relevant, the challenges new learning provides keeps learners motivated and committed to their chosen careers.

Psychologist Abraham Maslow, who gave us the hierarchy of human needs, stated that human motivation is based on people seeking fulfilment and change through personal growth.

Concepts like mentoring and reverse mentoring are finding in-

creased relevance at workplaces. With increased specialisation and opportunities to learn, there are also more options to repurpose learning. Many people, unhappy in their chosen careers, who know that their calling is elsewhere, have chosen to learn late and switch careers.

Invest in life

We all plan for retirement and old age health, medical, life insurance; investments to get us dividends; house, vehicle and security in many ways. How about investing in life? When we have all the many comforts that we worked for all life, what will we do with life itself? Have we equipped ourselves with some skills that will keep us contentedly, gainfully occupied?

Nima Srinivasan, a brand consultant and market researcher, decided mid-career to learn to be a trainer a learning that was rewarding for the insight she gained into human values, behaviours and fears, as also that would sustain her income after the conventional retirement age. Vivek Banerjee, Project Head with a gaming company, tries to learn one new skill each year, something that is entirely removed from his job role but augments his personality and world view. From calligraphy to book critiques and cooking, he embraces the learning of as diverse subjects as he can. At 51, when Varsha Prakash realised that she was perhaps finding it harder to retain information, she plunged headlong into learning new things. The physical and mental discipline that helped her train for long-distance running at 40, had equipped her well. She started to sing after overcoming the initial flop sweat, and is now buoyant about learning rollerblading, swimming and horse riding.

Seniors are constantly proving stereotypes wrong. Bangaloreans are familiar with Pizza Haven run by two amazing septuagenarians Padma Sreenivasan and Jayalaxmi Srinivasan. When they started it as a small tuck shop in 2003, the two women admit that they did not know how to make pizzas, but they knew that youngsters loved it. Pizza Haven became a hit with youngsters and grew to enable the dynamic duo realise their dream of building an old-age home.

Henry Ford said, Anyone who stops learning is old, whether at 20 or 80. Anyone who keeps learning stays young. Doesn't retirement from job and responsibilities seem like the perfect time to learn all that one wanted to teaching, reading, writing, volunteering, sport, cooking, art, music? Finding a purpose by volunteering, contributing one's skills, experience or knowledge and giving back to society can be fulfilling. It creates positive stress in life. That it keeps the mind alert is the bonus.

Those elders who embrace change and move with the times live happier and healthier. According to cognitive psychologist Scott Barry Kaufman, learning a new skill helps ward off dementia by strengthening the connections between parts of our brain. While brain games improve a limited aspect of short-term memory, Kaufman says, challenging activities strengthen entire networks in the brain.

Increasingly, just as the older generation is picking up new challenges of a changing world, like technology-aided communication learning to use computers and smartphones, younger people are also being drawn to traditional forms of arts, crafts, cooking, medicine and learning. In a quiet, aesthetic corner of Bangalore, at an art ashram called Bimba, Deepika Dorai is keeping the family-inherited art of Rasalok miniature, still theatre performance alive. Sweta Sinha is a software engineer whose love for maths drew her to Vedic maths. She learnt it from books and the Internet. The learning of this system of mental calculations which is simpler, easier and devoid of mistakes was so fulfilling that she decided to repurpose her talent for maths from writing software to teaching Vedic maths to kids.

Learning sustains and fills us with new life energy. What holds us back from exploring and learning new things, things that we wanted to do all life as other things took precedence, is mainly the fear of standing out; the anxiety of not being good enough which appear to us camouflaged in excuses of not having enough time or the aptitude. It is then that we need to consider what we stand to lose in trying and in giving up.

Favourable conditions seldom present themselves. There is never a more opportune time than now. So, go register for that theatre workshop or Zumba class; join a volunteering group or learn to write RTIs; get online to learn sketching or a new language. John Greenleaf Whittiers words create perspective, Of all sad words of tongue or pen, the saddest are these, It might have been. ❑

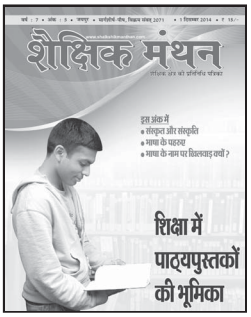

Bullying in School to Get Punishable

❑ **Ritika Chopra**

The government is actively considering a proposal to make bullying on campus a punishable act in schools after an expert panel headed by the chairman of the Central Board of Secondary Education (CBSE) flagged it as a "critical" problem in a report submitted to the Union human resource development ministry recently.

There is already a no-tolerance policy toward ragging in colleges as directed by the Supreme Court. However, there's no such code for bullying in schools. According to sources, the expert committee has expressed a strong "need to develop an anti-bullying policy and effective strategies, including both preventive and intervention measures".

The panel, comprising school principals, psychologists and education secretaries of different states, was set up during the UPA government. Its report, submitted last month, proposes punishments for bullying including oral and written warnings, fines, suspensions for a specified period, withholding of examination results and expulsion from school in extreme cases.

The committee also wants the government to direct all schools to form an anti-bullying committee and have a fulltime counselor on campus, launch a national helpline to report cases and set up an independent monitoring agency for such complaints. The panel has also recommended that schools allow victims to report cases anonymously.

Although there isn't any formal definition of bullying in schools, the ways in which students are harassed include teasing, name calling, physical intimidation and gossip. For an anti-bullying policy, the government will have to define the act, as it's done for ragging in colleges. School bullying usually goes unreported but instances have surfaced recently on social media, creating a furore. In March this year, a phone video showed a group of class VI students physically and verbally abusing another from class VII at a prominent south Delhi school. Such intimidation is pervasive across age groups, according to an expert.

"Schools have started waking up to the problem of bullying, but they need to articulate a policy to clarify what is acceptable and what isn't. Bullying doesn't happen only in senior classes, it's also prevalent in primary sections. Punishment is not a solution. It's important to have a fulltime counselor on campus to find out why a child is bullying others," said child psychologist Aparna S Gharpure.

Although there isn't any formal definition of bullying in schools, the ways in which students are harassed include teasing, name calling, physical intimidation and gossip. For an anti-bullying policy, the government will have to define the act, as it's done for ragging in colleges. School bullying usually goes unreported but instances have surfaced recently on social media, creating a furore. In March this year, a phone video showed a group of class VI students physically and verbally abusing another from class VII at a prominent south Delhi school. Such intimidation is pervasive across age groups, according to an expert.

राजस्थान में रुक्टा (राष्ट्रीय) का प्रथम प्रदेश महिला सम्मेलन

भारतीय संस्कृति के आदर्शों को बचाएं- *गीता ताई*

अखिल भारतीय महिला समन्वय संयोजिका माननीय गीता ताई गुण्डे का कहना है कि देश में महिलाओं की रक्षा के लिए प्रभावी कानून बनाने की आवश्यकता है। गीता ताई ने जीडी गर्ल्स कॉलेज में पत्रकारों से बातचीत करते हुए कहा कि महिलाओं की सुरक्षा के लिए बने कानून प्रभावी रूप से लागू भी होने चाहिए। गुण्डे ने कहा कि महिलाओं पर बढ़ती हिंसा चिंता का विषय है। महिलाओं की रक्षा के लिए बनने वाले कानून केवल किताबों तक सीमित नहीं रहने चाहिए। उन्होंने इस बात पर संतुष्टि जताई कि अब ग्रामीण महिलाएं हिंसा के खिलाफ आवाज उठाने लगी हैं। उन्होंने कहा कि आधुनिकता के नाम पर संस्कारों की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। उन्होंने समाज की मानसिकता और विचारों में बदलाव की आवश्यकता भी जताई।

अखिल भारतीय महिला समन्वय संयोजिका माननीय गीता ताई गुण्डे ने महिलाओं से आह्वान किया कि भारतीय संस्कृति के आदर्शों को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएं। सभ्य और आधुनिक बनने के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति अपनाने से बचना चाहिए। वे 30 नवम्बर 2014 को जीडी गर्ल्स कॉलेज में अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ से संबद्ध रुक्टा (राष्ट्रीय) द्वारा आयोजित प्रथम प्रांतीय महिला सम्मेलन में मुख्य वक्ता के रूप में सम्बोधित कर रही थी। उन्होंने महिलाओं की स्थिति और चुनौती विषय पर बोलते हुए कहा कि महिलाएं अपनी समस्याएं पुरजोर तरीके से उठाएं। विज्ञापन से प्रभावित होकर महिलाएं आंतरिक व शारीरिक दुर्बलता का शिकार हो रही है। इस कारण मातृत्व भार ग्रहण करने में भी कमी आ रही है। पैसों के लिए सेरोगेट मदर बनने को तैयार है। लिव इन रिलेशनशिप मे रह रही हैं। उन्होंने कहा कि हम मूल्य भूल रहे हैं। उन्होंने कन्या भ्रूण हत्या पर चिंता व्यक्त की। महिलाओं के विकास के लिए ठोस नीति बननी चाहिए। अन्याय, अत्याचार के खिलाफ महिलाओं को आवाज उठानी चाहिए।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के राष्ट्रीय संगठन मंत्री मा. महेंद्र कपूर ने कहा कि समाज जीवन में शिक्षक की साख गिरना चिंता का विषय है। उन्होंने शैक्षिक महासंघ के गठन के उद्देश्य, शैक्षिक परिवर्तन हेतु चल रहे प्रयास, कर्तव्य बोध, गुरु वन्दन कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षकों की सोच में परिवर्तन हेतु चल रहे प्रयासों की चर्चा की। संगठन द्वारा यह वर्ष महिला सहभागिता वृद्धि वर्ष के रूप में मनाने की भी जानकारी दी।

रुक्टा (राष्ट्रीय) के प्रदेश संयुक्त मंत्री डॉ. गंगा श्याम गुर्जर ने कहा कि यह संगठन शिक्षा के साथ साथ समाज के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करता है। सम्मेलन में जीडी कॉलेज प्राचार्या एवं आयोजन अध्यक्ष डॉ. ज्योति सिन्हा, इकाई सचिव एवं कार्यक्रम की सचिव डॉ. बुद्धमति यादव, विभाग महिला प्रतिनिधि डॉ. ऋतु गुप्ता तथा डॉ. रचना आसोपा ने भी विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. शैफाली बार्थोनिया तथा डॉ. लता शर्मा ने किया। कार्यक्रम में पूर्व प्रदेश उपाध्यक्ष डॉ. कुमकुम कपूर, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय की प्राचार्य डॉ. यशोदा मीणा, विभाग अध्यक्ष डॉ. शशिकांत गुप्ता सहित राजस्थान की 300 से भी अधिक महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

सम्मेलन के दूसरे सत्र में कालेजों में महिला व्याख्याताओं के साथ भेदभाव, पुरुष व्याख्याताओं द्वारा अपशब्दों के प्रयोग करने, चाइल्ड केयर, अवकाश, कॉलेजों में टायलेट व जहां टायलेट हैं वहां नियमित सफाई नहीं होने आदि पर चर्चा की गई। महिला प्रतिनिधियों ने प्राचार्यों के लिए ओरियंटेशन कोर्स, कार्य विभाजन को लेकर विभेदीकरण, विद्यार्थियों के बढ़ती संख्या के कारण उदयपुर में और कॉलेज खोलने की मांग की। खुले सत्र में ज्योति भार्गव (भीलवाड़ा), डॉ. सरस्वती मित्तल (चिमनपुरा), डॉ. मधु पंजाबी (कालाडेरा), डॉ. भारती प्रकाश (अजमेर), डॉ. दीपाली भार्गव (अजमेर), डॉ. सुमित्रा शर्मा, डॉ. अनिता रायसिंह सहित कई प्राध्यापिकाओं ने समस्याएं गिनाई। संगठन की संयोजिका डॉ. रेखा भट्ट ने बताया कि महिला व्याख्याता प्रतिनिधियों की समस्याओं को केंद्रीय कार्यसमिति के पास भेजी जाएगी।

शाश्वत जीवन मूल्यों पर हि.प्र. में कार्यशाला आयोजित

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ की शाश्वत जीवन मूल्यों पर कार्यशाला कुनाल पथरी, धर्मशाला में 23 नवम्बर 2014 को सम्पन्न हई। जिसमें प्रो. जे.पी. सिंघल मुख्य अतिथि व श्री जगदीश सिंह चौहान विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित हुए। कार्यशाला में प्रदेश के 82 शिक्षकों ने भाग लिया। कार्यशाला में 4 सत्र हुए। प्रथम सत्र में दीप प्रज्जवलन तथा सरस्वती वन्दना के पश्चात् जिलाध्यक्ष पवन कुमार ने आए हुए पदाधिकारियों का स्वागत किया। तत्पश्चात मा. जगदीश सिंह चौहान (उपाध्यक्ष, प्राथमिक संवर्ग अ.भा. राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) ने अ.भा.रा. शैक्षिक महासंघ का परिचय तथा शाश्वत जीवन मूल्यों पर प्रकाश डाला। द्वितीय सत्र में प्रान्ताध्यक्ष पवन मिश्रा ने शाश्वत जीवन मूल्यों पर अपने उदबोधन में कहा कि चरित्र, संस्कार, धर्म ही शाश्वत जीवन मूल्य है। शाश्वत जीवन मूल्य ही सुखी जीवन का आधार है। तृतीय सत्र में मा. चेतराम (इतिहास संकलन व शोध संस्थान नेरी हमीरपुर) ने कहा कि शिक्षक शाश्वत जीवन मूल्य पहले अपने जीवन में उतारे। अन्तिम सत्र में प्रो. जे.पी. सिंघल (राष्ट्रीय महामन्त्री, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ) ने कहा कि शाश्वत जीवन मूल्यों को पहले जानना है फिर मानना है तब करना है। संचालन कर रहे प्रदेश महामंत्री रजनीश चौधरी ने प्रदेश में होने वाले आगामी कार्यक्रमों की जानकारी रखी। अन्त में अशोक जी ने आए हुए पदाधिकारियों का धन्यवाद किया।

राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का प्रदेश शैक्षिक सम्मेलन किशनगढ़ में हुआ आयोजित

राजस्थान बनेगा शिक्षा का सिरमौर- *प्रो. वासुदेव देवनानी*

किशनगढ़ के राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय में 7 नवम्बर 2014 को राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) के दो दिवसीय प्रांतीय सम्मेलन के उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए राजस्थान के शिक्षा राज्यमंत्री प्रो. वासुदेव देवनानी ने कहा कि शैक्षिक व्यवस्था की धुरी शिक्षक है। यदि शिक्षक संकल्प ले तो राजस्थान शिक्षा क्षेत्र में सिरमौर बन सकता है। उन्होंने कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में आई विसंगतियों को दूर करने के लिए शिक्षकों को सबसे पहले स्वयं से पहल करनी होगी शिक्षक ये सुनिश्चित करें कि सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थी परीक्षाओं में निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की भांति वरीयता सूची में बेहतर स्थान प्राप्त करे। शिक्षक कक्षाओं में अध्यापन की जिम्मेदारी को पूरी ईमानदारी से पूरा करेंगे तो बेहतर परिणाम अवश्य प्राप्त होंगे। प्रो. देवनानी ने कहा कि विद्यालयों में शिक्षकों की कमी को शीघ्र पूरा किया जाएगा। सरकार ने प्रदेश में डीईओ प्रारंभिक के सभी पदों पर नियुक्ति कर दी है, डीईओ के रिक्त 142 पदों को विभागीय पदोन्नति के माध्यम से भरा जाएगा। वहीं शिक्षा विभाग में वर्ष 2009 से डीपीसी नहीं हुई थी, जिसे प्रारंभ किया गया है। प्रदेश के 3 संभागों में डीपीसी की गई है बाकी रहे 4 संभागों में नवम्बर के अंत तक डीपीसी हो जाएगी। उन्होंने कहा कि थर्ड ग्रेड शिक्षकों की नियुक्ति का मामला न्यायालय में लंबित है, सरकार द्वारा उक्त मामले की जल्द सुनवाई हेतु अपील की गई है न्यायालय के निर्णय का सम्मान किया जाएगा। उन्होंने शिक्षकों की सर्दी की छुट्टियाँ 25 से 31 दिसम्बर तक यथावत रखने की जानकारी देते हुए कहा कि शिक्षकों को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा चलाए जा रहे स्वच्छ भारत अभियान का हिस्सा बनते हुए स्वच्छ व आदर्श विद्यालय का सपना साकार करना होगा। जिसके तहत प्रत्येक पंचायत समिति पर एक आदर्श विद्यालय की स्थापना की जाएगी। उन्होंने विद्यालयों में नियमित सफाई की बात कही, साथ ही प्रदेश के सभी विद्यालयों में टॉयलेट बनाने के लक्ष्य को शीघ्र पूरा करने का भरोसा दिलाया। इससे पूर्व स्वागताध्यक्ष किशनगढ़ विधायक भागीरथ चौधरी ने स्वागत उद्बोधन में कहा कि शिक्षकों की विभिन्न समस्याओं एवं शिक्षा व्यवस्था के संबंध में सम्मेलन में चर्चा के सार्थक परिणाम अवश्य प्राप्त होंगे। नगर परिषद सभापति गुणमाला पाटनी ने कहा कि शिक्षक समाज को दिशा देते हैं। गुरुजनों के मार्गदर्शन में चलकर कई लोगों ने समाज व राष्ट्र विकास को नई दिशा प्रदान की है। सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अध्यक्ष प्रो. बी.एल. चौधरी ने कहा कि शिक्षा की गुणवत्ता में तभी सुधार होगा जब शिक्षक मानसिक रूप से इसके लिए तैयार होंगे। उन्होंने कहा कि माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से जो अपेक्षाएं हैं उन्हें पूरा किया जाएगा। बोर्ड द्वारा डायरेक्टरेट ऑफ रिसर्च का गठन शीघ्र किया जाएगा। जिसके माध्यम से शोधार्थी शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाएगा। उन्होंने कहा कि शिक्षक नवाचार, वर्तमान पाठ्यक्रम में परिवर्तन एवं अन्य सुझाव बोर्ड की वेबसाइट पर भेजकर नई व्यवस्थाओं को लागू करने में सहभागी बन सकते हैं। उद्घाटन कार्यक्रम में नगर परिषद सभापति श्रीमती गुणमाला पाटनी भी उपस्थित रही। सम्मेलन में बोलते हुए राजस्थान शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) के प्रदेशाध्यक्ष प्रहलाद शर्मा ने कहा कि सामाजिक परिवर्तन की जिम्मेदारी शिक्षकों पर है, शिक्षक संगठनों का उद्देश्य अपनी सदस्यता बढ़ाना ना होकर समाज को जागरुक करना होना चाहिए। उन्होंने शिक्षकों के हित में एकीकरण व समानीकरण, प्रधानाचार्यों के रिक्त पदों पर भर्ती, वेतन विसंगतियों से संबंधित समस्याओं का शीघ्र निस्तारण हेतु आवश्यक कदम उठाने की बात कही।

सत्र के मुख्य वक्ता राष्ट्रीय संगठन मंत्री अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के श्री महेन्द्र कपूर ने कहा कि शिक्षक संघ के माध्यम से शिक्षक समाज व देश में सकारात्मक परिवर्तन का संकल्प लेकर आगे बढ़ रहे हैं। संगठन द्वारा शिक्षकों के दायित्व का स्मरण कराने हेतु गुरु पूर्णिमा के अवसर पर गुरु वंदन कार्यक्रम भी आयोजित किए जा रहे हैं। शैक्षिक महासंघ द्वारा प्रतिवर्ष प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नए आयाम स्थापित करने वाले शिक्षकों को जुलाई 2015 से एक-एक लाख के तीन नकद पुरस्कार देकर सम्मानित भी किया जाएगा। इससे पूर्व सम्मेलन के संयोजक रामअवतार शर्मा ने अतिथियों का परिचय कराया, सह संयोजक व जिलाध्यक्ष बिरधीचन्द वैष्णव ने आभार प्रदर्शन किया। प्रदेश महामंत्री देवलाल गोचर ने महामंत्री प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। सम्मेलन के प्रारम्भ में स्व. श्री जयदेव पाठक स्मृति व्याख्यान माला में श्री हनुमान सिंह (क्षेत्र कार्यवाह, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) व श्री नन्द लाल जोशी (क्षेत्रीय कार्यकारिणी सदस्य) का भी मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। सम्मेलन के खुले सत्र में पारित किये गये दो प्रस्तावों में प्रथम 'पाठ्यपुस्तकों की तत्काल समीक्षा कर उनमें बदलाव किया जायें' तथा द्वितीय 'कार्मिकों व जनप्रतिनिधियों के परिजन राजकीय विद्यालयों में पढ़ें।' प्रथम दिवस रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये।

संगठन के दो दिवसीय सम्मेलन का समापन महिला एवं बाल विकास मंत्री अनिता भदेल ने राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय परिसर में शिक्षक संघ से जुड़े हजारों शिक्षक-शिक्षिकाओं को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि के रूप में कहा कि शिक्षकों को सूचना प्रौद्योगिकी के युग और बदलते विश्व से बालक-बालिकाओं को जोड़ने के लिए शैक्षिक नवाचारों से जुड़ना चाहिए। शिक्षकों को शैक्षिक नवाचारों की कार्यशाला में बढ़-चढ़कर भाग लेना चाहिए ताकि वे पढ़ाने के नए-नए तरीकों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इससे वे बालक को अच्छे तरीके से तैयार कर सकेंगे। सरकारी स्कूलों का परीक्षा परिणाम केवल भौतिक संसाधनों से ही ठीक नहीं होगा बल्कि शिक्षकों के दृढ़ संकल्प से होगा।

सरकारी स्कूलों के शिक्षक गुणवत्ता में निजी स्कूलों से श्रेष्ठ हैं। भौतिक सुविधाएं और संसाधन भी समाज को जोड़कर जुटाए जा सकते हैं। समाज का विश्वास जीतेंगे तो नेता भी शिक्षकों से डरेंगे। उन्होंने कहा कि आधे प्राचार्यों ने तो एसएसए से मिली राशि का भी उपयोग नहीं किया। इसी तरह बहुत से स्कूलों में शौचालयों के गंदे होने के डर से ताले लगे हुए हैं। जब आप कुछ करेंगे ही नहीं तो समस्याओं का समाधान कैसे करेंगे। ऐसा नहीं है कि केवल अधिकारियों के घरों में पैदा होने वाले बच्चों का आई क्यू ही बढ़िया होता हो और गरीब घरों के बच्चे कमजोर होते हों। समापन समारोह पश्चात् सह-संयोजक व जिला मंत्री महेन्द्र लखारा ने सभी का आभार प्रदर्शन किया।

राष्ट्रीय शिक्षा पर अखिल भारतीय विद्वत गोष्ठी

विश्व, भारत को आशाभरी दृष्टि से निहार रहा है- माननीय मोहन भागवत

वर्तमान विश्व में अप्रसन्नता तेजी से पसर रही है। दुखी विश्व सुख का मार्ग बताने हेतु भारत को आशाभरी नजरों से निहार रहा है। भारत ही वह देश है जहाँ मानवता ने लगभग 4000 वर्षों तक समता व सम्पन्नता युक्त सुख का अनुभव किया था। पूर्व के सुखमय समय को पुनः साकार करने हेतु आज विश्व को भारतीय प्रकृति की शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है। पुनरुत्थान विद्यापीठ को ऐसी शिक्षा व्यवस्था को खड़ा करना ही चाहिए। ये विचार राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सर संघचालक माननीय मोहन राव भागवत ने प्रकट किए। श्री भागवत पुनरुत्थान विद्यापीठ द्वारा 'राष्ट्रीय शिक्षा की संकल्पना एवं स्वरूप' विषय पर नागपुर में 25 व 26 नवम्बर को आयोजित दो दिवसीय अखिल भारतीय विद्वत गोष्ठी को सम्बोधित कर रहे थे। श्री भागवत ने कहा कि पश्चिम ने पिछले 2000 वर्षों में सुख पाने को अनेक प्रयोग किए मगर परिणाम में दुःख ही मिला है। आज जहाँ कहीं भी सुख दिखाई देता है वह दूसरों के शोषण का परिणाम है। विश्व में फैली अशान्ति इस बात की गवाह है कि यह सुख स्थाई नहीं रह सकता। सर्वे भवन्तु सुखीनः का उदघोष करने वाला भारत ही विश्व को सुख का मार्ग दिखा सकता है। मैकालयी शिक्षा के कारण भारत राह से विमुख हो गया है शिक्षा व्यवस्था को सही कर युवा पीढ़ी की मानसिकता को बदलना होगा। आज कार्य के अनुकूल समय है अतः सहचित्त होकर प्रसन्नता से तीव्रगति से कार्य करना होगा। कार्य करते समय यह याद रखना होगा कि कार्यकर्ता की प्रमाणिकता ही संगठन की सही पहचान होती है। अध्यक्षता अंतर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ के वरिष्ठ संन्यासी श्री गोविन्द प्रभु ने की।

राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं राष्ट्रीय शिक्षा पर बोलते हुए माननीय सुरेशजी सोनी (सहसरकार्यवाह- रा.स्व.संघ) ने कहा कि प्रत्येक देश के कुछ मूल्य होते हैं जिन्हें लेकर वह देश जीता है तथा उन मूल्यों के वशीभूत होकर ही वह अन्य देशों के साथ व्यवहार करता है। भारत के दीर्घ इतिहास ने उसे एक स्वाभाविक राष्ट्र के रूप में विकसित किया है। अंग्रजों ने अपने स्वार्थवश मैकालयी शिक्षा द्वारा भारत को भ्रमित कर उसे विखण्डित करने का प्रयास किया मगर उन्हें अधिक सफलता नहीं मिल पाई। जड़ तथा चेतन दोनों से समान भाव से उदारता पूर्वक व्यवहार करना भारतीय संस्कृति की सनातन विषेषता है। त्यागपूर्वक प्रकृति का उपभोग करने की भारतीय अवधारणा की विश्व को पूर्व के किसी समय की तुलना आज अधिक आवश्यकता है। शासन निरपेक्ष शिक्षातन्त्र विकसित करना एक कठिन कार्य है मगर सत प्रयास से उसे प्राप्त करना किया जा सकेगा।

राष्ट्रीय शिक्षा की प्रतिष्ठा में अवरोध मुख्य विषय के अन्तर्गत व्यक्ति केन्द्रित भौतिक शिक्षा पर श्री मुकुन्द कानिटकर, विकास की वास्तविक संकल्पना पर डॉ.कनकसभापति, मन की शिक्षा का अभाव पर डॉ. संजीवन देवधर ने प्रभावी वार्ताएं प्रस्तुत की। अध्यक्षता डॉ. रामानुजन देवनाथन ने की।

गोष्ठी के दूसरे दिन 'राष्ट्रीय शिक्षा के कुछ आयाम' मुख्य विषय के अन्तर्गत संयोजक इंदुमति काटदरे ने विस्तार से राष्ट्रीय शिक्षा के इतिहास की जानकारी दी। सुश्री काटदरे ने कहा कि यह दुर्भाग्य की बात है कि देश में शिक्षा का इतिहास अंग्रेजों के भारत में आगमन के बाद से पढ़ाया जाता है जबकि भारत में अति प्राचीनकाल से शिक्षा की सुदृढ़ व्यवस्था रही है। अंग्रेजों ने तो भारतीय शिक्षा व्यवस्था को नष्ट करने का काम किया था। 'एकात्म दृष्टि' पर डॉ.महेशचन्द्र शर्मा, 'शासन निरपेक्ष, अर्थ निरपेक्ष शिक्षा' पर प्रो. अनुरुद्ध देशपाण्डे ने श्रोताओं की जिज्ञासाओं का समाधान किया। शंका निवारणार्थ प्रश्नोत्तर व मुक्त चिन्तन के सत्र में अनेक सम्भागियों के विचार प्रकट किए। संचालन श्री वासुदेव प्रजापति ने किया। अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ का प्रतिनिधित्व श्री बजरंगप्रसाद मजेजी, श्री विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी, श्री एच.नागभूषण, श्रीमती सीतालक्ष्मी, श्री गिरीश अग्निहोत्री आदि ने किया।

दिल्ली अध्यापक परिषद के प्रतिनिधि मण्डल की मुख्य सचिव से वार्ता

दिल्ली अध्यापक परिषद का एक प्रतिनिधिमंडल श्री साहब सिंह चौहान विधायक तथा परिषद् अध्यक्ष जयभगवान गोयल के नेतृत्व में मुख्य सचिव श्री डी.एम. सपोलिया से मिला, जिसमें छठे वेतन आयोग में अध्यापकों की वेतन त्रुटि के साथ-साथ शिक्षकों की विभिन्न मांगों को रखा गया। अध्यक्ष श्री जयभगवान गोयल ने कैशलैस स्कीम, अर्जित अवकाश, आकस्मिक अवकाश आदि का मुद्दा उठाया। विधायक श्री साहब सिंह चौहान ने अध्यापकों की भर्ती नियमित कराने का मुद्दा उठाया तथा शिक्षकों के सभी मांगों को जायज बताते हुए मुख्य सचिव से सभी मांगें मानने का पुरजोर आग्रह किया। इस अवसर पर विमर्श में शिक्षा सचिव, वित्त सचिव, शिक्षा निदेशिका के अतिरिक्त डीसीए भी उपस्थित थे। मुख्य सचिव जी ने सभी मांगों को गंभीरता से लेते हुए यथाशीघ्र शिक्षकों के हित में निर्णय लेने का आश्वासन दिया।